भा.नी.प्र.
मोनोग्राफ
1

भ्रामक समानता

समान अवसर आयोग की समीक्षा

राकेश सिन्हा

भारत नीति प्रतिष्ठान

भा.नी.प्र.

मोनोग्राफ

1

भ्रामक समानता

समान अवसर आयोग की समीक्षा

प्रो. राकेश सिन्हा

भारत नीति प्रतिष्ठान

प्रकाशक : **भारत नीति प्रतिष्ठान**
डी-51, पहली मंजिल, हौज खास
नई दिल्ली-110 016
टेली.: 011-26524018
फैक्स: 011-46089365
ई-मेल: indiapolicy@gmail.com
संस्करण : प्रथम, 2009
© भारत नीति प्रतिष्ठान
मूल्य : रु. 50.00 (पचास रुपए)
मुद्रक : ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली-110 002

प्राक्कथन

भ्रामक समानता, समान अवसर आयोग की समीक्षा: वैकल्पिक नीति निर्माण के उद्देश्य से प्रेरित भारत नीति प्रतिष्ठान का पहला बौद्धिक हस्तक्षेप है। प्रो. राकेश सिन्हा द्वारा लिखे गए इस मोनोग्राफ से एक श्रृंखला की शुरूआत हो रही है। इसके तहत प्रतिष्ठान से जुड़े कई और शोधार्थियों के कार्य शीघ्र ही प्रस्तुत किए जाएंगे। मैं इस कार्य के लिए श्री राकेश सिन्हा का हृदय से आभारी हूं जिन्होंने अल्प समय में एक बहुत ही सार्थक दस्तावेज को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। भारत नीति प्रतिष्ठान का विश्वास है कि भारत की समस्याओं के निदान के लिए वही समाधान उपयुक्त हैं जो भारतीय परिस्थितियों और जीवन पद्धतियों के अनुसार हो। इस अध्ययन का उद्देश्य सांसदों, विधायकों, नीति-निर्माण के सलाहकारों तथा समाजशास्त्रियों के बीच एक स्वास्थ्य बहस को जन्म देना है। यह विषय बौद्धिक जनता का उतना ध्यान आकर्षित नहीं कर पाया है जितना कि इसे करना चाहिए था। आशा है कि यह शोध कार्य 'समान अवसर आयोग' पर एक सचेतन बहस को गति प्रदान करेगा। लेखक का दृष्टिकोण उचित लगता है कि राष्ट्रीय मानवाधिकार को सार्वजनिक तथा निजी संस्थानों में भेदभाव/पक्षपात को समाप्त करने के लिए सशक्त करना पड़ेगा। यह सिद्धान्त भी उचित प्रतीत होता है कि जाति, धर्म-मत-पंथ, लिंग तथा जन्म स्थान पर आधारित भेदभाव मानवाधिकारों के उल्लंघन का ही अंश है। आवश्यकता संस्थानों के यथासंभव एकीकरण की है न कि उनकी संख्या में वृद्धि करने की।

इस शोधकार्य के अनुवाद, संपादन तथा टंकण आदि के कार्यों में कई व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हुआ। 'प्रभात प्रकाशन' को बहुत अल्प अवधि में इसके मुद्रण की चुनौती स्वीकार करने के लिए हार्दिक धन्यवाद। प्रो. (से.नि.) मदनलाल शर्मा, श्री आनन्द भारती (वरिष्ठ पत्रकार), प्रियदर्शी दत्ता, नीरज कुमार तथा संतोष कुमार को विशेष धन्यवाद। इन सभी का इस प्रकाशन में अमूल्य योगदान है।

5 अगस्त, 2009-

-डा. बजरंग लाल गुप्ता
अध्यक्ष, भारत नीति प्रतिष्ठान

भूमिका

किसी भी समाज के विकसित होने का एक अनिवार्य मापदंड समान अवसर का अधिकार होता है। समान अवसर का तात्पर्य जीवन के सभी क्षेत्रों शिक्षा, रोजगार, कला, संस्कृति और राजनीति में नागरिकों के साथ जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा और लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं होने को सुनिश्चित करना होता है। इसका सकारात्मक पहलू भी है कि सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक स्तरों पर जो वर्ग या समूह हाशिये पर हो उसका सशक्तिकरण इस प्रकार किया जाए ताकि वंचित, पिछड़े, शोषित लोग समान अवसर के अधिकार का उपयोग कर सकें। इसके लिए राजनीतिक एवं सामाजिक पहल की आवश्यकता होती है।

भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के द्वारा नागरिकों की स्वतंत्रता एवं समानता को सुनिश्चित किया गया। अनुच्छेद 15 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं बरतेगी। अनुच्छेद 14 में 'विधि के सामने समानता' (Equality before Law) और 'कानून का समान रूप से संरक्षण' (Equal Protection of Law) सुनिश्चित किया गया है। मौलिक अधिकारों को न्यायालय का संरक्षण प्राप्त है। स्वतंत्र न्यायपालिका ने इन अधिकारों को तत्वपूर्ण (Substantive) बना दिया है। भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व (Directive Principles of State Policy) के अंतर्गत राज्य को समानता स्थापित करने के लिए सकारात्मक पहल के लिए निर्देश दिया गया है। इस संदर्भ में अनुच्छेद 46 उल्लेखनीय है। इसमें कमजोर वर्ग के लोगों, विशेषकर अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को सामाजिक अन्याय और शोषण के विरूद्ध संरक्षण देने की बात कही गयी है।

इसी संदर्भ में आजादी के बाद से ही अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के उत्थान के लिए विशेष प्रयास होता रहा है। इस 'सकारात्मक भेदभाव' (Positive Discrimination) के सिद्धांत के अंतर्गत आरक्षण का भी प्रावधान किया गया है। यह औचित्यपूर्ण एवं आवश्यक कदम सिद्ध हुआ है।

भारत में रंग, नस्ल और धर्म के आधार पर भेदभाव की समस्या मोटे तौर पर नहीं रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने रंगभेद नीति के विरूद्ध अंतर्राष्ट्रीय अभियान मं अपनी साझेदारी दिखायी थी। औपनिवेशिक काल में साम्प्रदायिक टकराव की समस्या जरूर थी। परन्तु यह भारत की धर्मनिरपेक्षता की परंपरा एवं विश्वास को डिगा नहीं सकी। औपनिवेशक प्रशासन ने साम्प्रदायिकता का उपयोग साम्राज्यवाद को

मजबूत करने के लिए और भारत की राष्ट्रीयता को कमजोर बनाने के लिए किया। यह 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् शुरू हुआ जिसकी परिणति 1947 में हुई। 1871 में ब्रिटिश राज्य ने विलियम विल्सन हंटर को बंगाल के मुस्लिमों की आर्थिक स्थिति के अध्ययन की जिम्मेदारी सांपी। हंटर ने सरकारी आंकड़ों के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास किया कि मुस्लिमों के शिक्षा एवं रोजगार में पिछड़ेपन का कारण उनके साथ औपनिवेशिक राज्य एवं हिन्दुओं के द्वारा किया जा रहा भेदभाव है। हालांकि इसने यह बात भी स्वीकार की थी कि हिन्दुओं ने अंगजी शिक्षा को स्वीकार कर उसका लाभ उठाया जबकि मुसलमानों ने इसे अपनी परंपरा का विरोधी समझा।[1]

40 के दशक में जैसे-जैसे पाकिस्तान आंदोलन आगे बढ़ा, हंटर कमेटी की रिपोर्ट साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण कराने में मददगार सिद्ध होती रही। रोटी, रोजगार, विकास जैसे प्रश्नों को मुस्लिम लीग ने एकतरफा साम्प्रदायिक चश्मे से देखना शुरू किया। 1937 के चुनाव के बाद जब प्रांतों में कांग्रेस की सरकार बनी तब हंटर कमेटी की तर्ज पर ही मुस्लिम लीग ने पोरपुर कमेटी का गठन किया जिसने कांग्रेस की सरकारों पर भेदभाव बरतने का आरोप लगाया। रिपार्ट का निष्कर्ष था:- "Muslims are not getting their due share in the department such as medical and engineering…the government prevents Muslims from getting legitimate share in appointments[2]"

इस रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद कांग्रेस सरकारों ने इन आरोपों की जांच की और उन्हें आधारहीन एवं मनगढ़ंत पाया। जब तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष डा. राजेन्द्र प्रसाद ने संघीय न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वायर द्वारा स्वतंत्र जांच की पेशकश की तब मुस्लिम लीग के नता मोहम्मद अली जिन्ना ने इसे खारिज कर दिया।

यह संदर्भ इसलिए दिया गया है कि आजादी के 60 साल बाद भारत सरकार ने मुसलमानों की स्थिति जानने के लिए जस्टिस राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में कमेटी का गठन किया जिसने अपनी रिपोर्ट में हंटर कमेटी और पीरपुर कमेटो की तरह ही मुसलमानों को न सिफ पिछड़ा साबित किया बल्कि उसे उसके पिछड़ेपन के लिए सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक स्तरों पर 'संस्थागत भेदभाव' को कारण बताया। सच्चर कमेटी के तौर तरीकों एवं निष्कर्षों पर व्यापक असहमति रही है। अभय कुमार दुबे के अनुसार- ''सच्चर रिपोर्ट में एक आंकड़ागत खेल भी किया गया। जिसे समझने की जरूरत है। सामाजिक राजनीति सच पर प्रकाश डालन के लिए उसने जो तरीका अपनाया है वह इतना साफ-सुथरा नहीं है।''[3]

सच्चर कमेटी ने मुसलमानों के साथ इसी भेदभाव एवं पिछड़ेपन की आड़ में 'समान अवसर आयोग' गठित करने का सुझाव दिया है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि राज्य एवं इसकी संस्थाओं के द्वारा मुसलमानों के साथ भेदभाव बढ़ता जा रहा है।

इस भेदभाव को अल्पसंख्यक मंत्रालय द्वारा बनायी गयी डा. एन.आर. माधव मेनन की अध्यक्षता वाली विशेषज्ञ समिति ने 'ऐतिहासिक बोझ' (Historical Burden) कहा है। सच तो यह है कि सच्चर कमेटी भी भेदभाव को प्रमाणित करने वाला कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं कर पाई। इस बात को इस रिपोर्ट के समर्थक भी मानते हैं।[4]

सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि इसने सच्चर रिपोर्ट के दूसरे अध्याय में अफवाहों, साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से लगाए गए आरोपों, भेदभाव की मनगढ़ंत बातों एवं विकृत अपवादों का एक प्रकार से Codification कर दिया है। कमेटी स्वयं भी इसके प्रति आश्वस्त नहीं थीं। अध्याय के आरंभ में ही कमेटी ने लिखा है कि- "The committee is aware that not all perception are correct but they are also not built in vacuum."[5] इतना ही नहीं कमेटी 'समान अवसर आयोग' की आवश्यकता को भी साबित नहीं कर पाई है। उर्दू दैनिक 'हमारा समाज' ने लिखा है कि 'सच्चर कमेटी' ने इस बात का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है कि यह अल्पसख्यंक आयोग से किस प्रकार भिन्न होगा।'[6]

आखिर समान अवसर और उसके लिए आयोग पर भला किसे एतराज हो सकता है? परन्तु इसकी प्रकृति इसके धर्मनिरपेक्ष नाम के विपरीत है। यह 'समान अवसर' का उपयोग एक छलावा मात्र है। इसमें समूह पहचान को आधार बनाया गया है। व्यवस्था या समाज में भेदभाव होना कोई अनोखी बात नहीं है। उसका निदान होना चाहिए। लेकिन इस आयोग के पास कोई भी नागरिक, जो भेदभाव से अपने आपको पीड़ित मानता है, नहीं जा सकता है। वह तभी इसमें जा सकता है जब वह उस समूह का सदस्य हो जिस संस्थागत भेदभाव का शिकार माना जाए। इस आयोग की जननी मुसलमानों के लिए बनी कमेटी है एवं आयोग प अल्पसंख्यक मंत्रालय का नियंत्रण होगा। वे सभी वर्ग जिनके लिए पहले से संवैधानिक व्यवस्था है यथा अनुसूचित जाति व जनजाति, महिलाएं यदि स्वभावतः इस आयोग के दायरे में नहीं है।

स्वयं सलमान खुर्शीद जो अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री हैं ने स्पष्टतः कहा है कि ''मुसलमानों में काम करने की बहुत क्षमता है मगर हमें अवसर नहीं दिए जाते हैं। इसलिए समान अवसर आयोग गठित करने की बात आई है।''[7]

सार्वजनिक एवं निजी उद्यमों में धर्म के आधार पर आरक्षण को अघोषित रूप से थोपने का यह एक उपकरण मात्र साबित होगा। इस आयोग के संदर्भ में खुर्शीद का

कहना है कि ''हमारा प्रयास यह है कि सभी मुसलमानों को पिछड़े वर्ग के तहत आरक्षण दिया जाए। कॉरपोरेट सेक्टर एवं करों में छूट की शर्त पर अल्पसंख्यकों को रोजगार देने के लिए तैयार किया जाए''।[8]

सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के लिए इस आयोग द्वारा "Fair Practices Codes" बनाया जाएगा[9], जिसका उद्देश्य होगा धार्मिक समुदायों के बीच संख्यात्मक संतुलन बनाना। दूसरे शब्दों में जनसंख्या के अनुपात में रोजगार देना विवशता बन जायेगी।

इस प्रकार पुलिस, प्रशासनिक सेवा आयोग, सेना या निजी क्षेत्र की संस्थाओं को बार-बार स्पष्टीकरण देने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि किसी व्यक्ति को इसने धर्म के आधार पर खारिज नहीं किया है। ब्रिटेन में Commission for Racial Equality (CRC) ने वहां की सार्वजनिक एवं निजी संस्थाओं के सामने यह समस्या पैदा कर दी थी।

एक और प्रश्न है जिसका समाधान वर्तमान व्यवस्था एवं उसके जुड़े लोगों के पास नहीं है। देश में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय अल्संख्यक आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग जैसी संस्थाएं हैं। फिर अल्संख्यकों के लिए 'समान अवसर आयोग' का कार्य इससे किस प्रकार भिन्न होगा। खुर्शीद का उत्तर बहुत ही रोचक है, "Whoever gets it first takes it and others stay off."[10]

इस संदर्भ में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की भूतपूर्व सदस्या प्रो. जोया हसन की राय है कि इसे अर्द्ध न्यायायिक (Quasi judicial) दर्जा दिया जाना चाहिए उनके अनुसार "In country with a plethora of commissions, it's bound to overlap with the functioning of the existing ones such as the National Commission for Scheduled Castes, the National Commission for Scheduled Tribes or National Commission for Minorities. What's the use of a new commission if it is not given a quasi legal status"? [11]

ध्यान देने योग्य बात यह ह कि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग भी इसी तरह लगातार अपने अधिकारों में वृद्धि की मांग करता रहा है। 'समान अवसर आयोग' का आधार ब्रिटेन के Commission for Racial Equality को बनाया गया है। इसकी स्थापना 1976 में हुई थी। कालान्तर में इसे समाप्त करने के लिए बहस चली। यह पाया गया कि इस प्रकार की संस्था परस्पर भेदभाव का संस्थाकरण कर देती हैं, सौहार्द स्थापना की बात तो दूर की कौडो है। इसीलिए इसे 2007 में समाप्त कर इक्वलिटी और ह्यूमन राइट्स कमीशन बनाया गया है।

ब्रिटेन ही नहीं संयुक्त राज्य अमेरिका, न्यूजीलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया में अनेक संस्थाओं की जगह एक संस्था के अंतर्गत समस्या का समाधान ढूंढ़ा जा रहा है। अल्पसंख्यक मंत्रालय के द्वारा गठित 'विशेषज्ञ समिति' ने इसके विपरीक काम किया।

इसने मानवाधिकार आयोग को मजबूत करने एवं उसका दायरा बढ़ाने के स्थान पर एक Commission for Racial Equality के तौर-तरीके पर विभेदकारी संस्था के निर्माण को उचित पाया।

विघटित संस्था Commission for Racial Equality के पूर्व चेयरमैन के. हैम्पटन को भारत बुलाकर देश के पांच शहरों-मुंबई, दिल्ली, बैंगलोर, हैदराबाद एवं लखनऊ में कार्यशाला आयोजित किया गया।[12]

हैम्पट का दृष्टिकोण ब्रिटेन में सौहार्दपूर्ण समाज की स्थापना के बाधक माना गया है। इस अभियान को चलाने में भारत और यूरोप के अलग-अलग सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों की पूरी तरह से उपेक्षा की गयी है। भारत में 'संस्थागत भेदभाव' की बात बार-बार दोहराया जा रहा है।[13] यह बात न सिर्फ तथ्यहीन है बल्कि धर्मनिरपेक्ष मुस्लिम चिंतकों के शोधपूर्ण निष्कर्षों के विरीत भी है। हुमायूं कबीर का कथन उद्धरणीय है।

"We have all heard and read in the papers about discrimination in services, that recruitment is not always fair even though it is laid down in the constitution that there shall be equality and fairness. Now what is the reason? When jobs are few and applicants are many, the person who makes the appointment has a choice… it may be on the basis of family relationship or it may be on the basis of language or it may be on the basis of caste or religion….this patronage often is and still more often appears to be improper to those who are affected his decision...these are primarily due to the fact that the opportunities are far fewer than the demand for openings for men and women of different communities...a Hindu will complain about another Hindu, a Muslims will complain about another Muslim and of course a Hindu will complain still more about a Muslim and a Muslim about a Hindu. There are basically result of inadequacy of resources."[14]

सच्चर कमेटी या अल्पसंख्यक मंत्रालय के विशेषज्ञ समिति की संदर्भ सूचियों में हुमायूं कबीर, मोइन शकीर जैसे चिंतकों को स्थान नहीं दिया गया। अन्यथा वह इस प्रकार के निष्कर्षों पर नहीं पहुंचती।

अतः समान अवसर या इस प्रकार के आयोग के पीछे की मनोवृति और दूरगामी एजेंडे को समझना आवश्यक है। वह समानाता के नाम पर धर्म के आधार पर आरक्षण का रास्ता प्रशस्त करने वाला सिद्ध होगा। अभय कुमार दुबे ने इस संदर्भ में लिखा है कि- ''ध्यान रहे कि वैसे तो अल्पसंख्यक तरह-तरह के होते हैं, पर भारत में इसका आम मतलब होता है धार्मिक अल्पसंख्यक। धर्म के आधार पर आरक्षण देने की मांग पहले से ही हवा में है। चूंकि इस तरह का आरक्षण सेकुलर नजरिए से नहीं किय जा सकता, इसलिए कहीं न कहीं यह शक होता है कि यही मकसद अब ईक्वल अपोर्चुनिटी कमीशन के जरिए तो पूरा नहीं किया जा रहा है। यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि

सच्चर कमेटी की रपट आते ही धार्मिक आरक्षण देने की मांग करने वाले तत्व सबसे ज्यादा सक्रिया हो गए थे''।[15]

मुसलमानों के पिछड़ेपन को 'ऐतिहासिक बोझ' मानना ऐतिहासिक तौर पर अनुचित है। यह बात अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए जरूर प्रसांगिक है। यहां तक कि भारत विभाजन के बाद भी मुसलमानों के साथ राज्य एवं समाज ने धर्म निरपेक्ष वसूलों के अनुसार व्यवहार किया है। विभाजन के बाद की स्थिति का निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है।

"Altogether 10,427 Muslim officers and other ranks opted for India whereas only 2,987 non-Muslims officers and other ranks opted for Pakistan. It is interesting to note that most of the non-Muslims who had opted for Pakistan have since returned to India, leaving only about 200 non-Muslim in Pakistan, most of them Christians and Anglo-Indian. Indeed, a goodly number of Muslims who had opted for Pakistan have also come back to India.

The number of Muslims in all categories of Government service, excluding those in the Army, the Navy and the Air force and the Railway, who opted for service in Pakistan "provisionally" and have now "finally" opted for service in India and have already come back to India, is approximately 1,590. Altogether 18,000 Muslim railway men, who had provisionally opted for Pakistan, finally changed their decision and elected to serve in the Indian Dominion.

The Government of India have taken back and reemployed Muslim officials who changed their provisional option for Pakistan into "India Final".[16]

जाहिर है भारतीय समाज एवं राज्य ने Melting Pot के सिद्धान्त एवं व्यवहार को पूरी तरह से नकारा है। 'समान अवसर आयोग' की अवधारणा इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को न सिर्फ नकारता है बल्कि धर्मनिरपेक्ष शासन एवं समाज के ऊपर एक बड़ा प्रश्न खड़ा कर दिया है।

मानवाधिकार एवं समानता दोनों एक-दूसरे से जुड़े पक्ष हैं। धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के नाम पर भेदभाव मानवाधिाकर का उल्लंघन है। मानवाधिकार आयोग समान अवसर आयोग के अधिकार को सुनिश्चित करने में समर्थ है। परंन्तु इस बात की जानबूझकर उपेक्षा की जा रही है।

भाग-1

समान अवसर आयोगः सिद्धान्त और व्यवहार

समानता और भारतीय संविधान

''न्याय के समाने सभी लोग झुकने को मजबूर हो जाते हैं। समानता के नाम से बहुत से लोगों में भय और द्वेष उत्पन्न होता है[1]।''

भारत का संविधान समानता की भावत से प्रेरित एक गणतांत्रिक दस्तावेज है। इसमें समानता, न्याय और स्वतंत्रता जैसे गणतांत्रिक मूल्य संयोजए हुए हैं। इसका मूल उद्देश्य समाज में व्याप्त हर प्रकार के भेदभाव को मिटाना है, क्योंकि केवल भेदभाव-रहित सामाजिक व्यवस्था में ही स्वतंत्रता को महफूज किया जा सकता है।

व्यक्ति अधिकार तथा समष्टि के अधिकार के बीच में तालमेल बिठाना भारतीय संविधान की प्रमुख उपलब्धि है। संविधान के मौलिक अधिकारों में इन दोनों प्रकार के अधिकारों का उल्लेख है। व्यक्तिगत अधिकार सभी नागरिकों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में दिए गये हैं। उसी प्रकार समष्टिगत अधिकार धार्मिक-अल्पसंख्यकों और कुछ इसी तरह के अन्य कई अधिकार अनुसूचित जाति, जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्ग को दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा संविधान बुद्धिमत्ता के साथ व्यक्ति के मोल को और उसके समुदाय के मोल को जोड़कर देखता है। समकालीन उदारवादी विचारधारा अभी भी पाश्चात्य बहुजातीय तथा बहुसांस्कृतिक परिदृश्य में समष्टियों और सांस्कृतिक विचारधाराओं के प्रयोग को लेकर उलझी हुई है। परन्तु, भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अपनी विचारशीलता का परिचय देते हुए इस भ्रम को आज से कई दशक पहले स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ही सुलझा लिया था।

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार तथा राज्य के नीति-निर्देशक तत्व नागरिकों का समान अधिकार का उपभोग करने का अवसर देते हैं। संविधान के अनुच्छेद 16(1) तथा 16(2) नागरिकों को उनके वर्ण, जाति, लिंग तथा धर्म के आधार पर भेदभाव किये बिना समान अवसर का आश्वासन देते हैं। इसके अलावा संविधान भारतीय राज्य को सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में हस्तक्षेप द्वारा समानता प्रतिष्ठित करने का दिशा-निर्देश देता है। संविधान न केवल जाति, आस्था, समुदाय और भाषा के समान व्यवहार के लिए प्रावधान बनाता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि वह क्रियान्वित हो। नागरिकों

का हित साधना ही संविधान का ध्येय है। संविधान इन मूल्यों के क्रियान्वयन के लिए 'सकारात्मक कार्रवाई' कर सकता है, जिससे एक समानता के धरातल का निर्माण हो सके। संविधान का ध्येय तथा समय-समय पर न्यायपालिका द्वारा अनुसूचित जाति/जनजातति तथा अन्य पिछड़े वर्गों के संबंध में सुनाए गये निर्णय इस बात का प्रमाण हैं कि एक विषमतारहित समाज-व्यवस्था का निर्माण करना भारतय गणराज्य का उद्देश्य है।

यद्यपि समान अवसर एक ऐसा शिगूफा है जिसकी व्याख्या कई तरह से की जा सकती हैं। परन्तु एक आम सहमति है कि नीति-निर्धारण और उसके क्रियान्वयन के स्तर पर भेदभाव का न होना ही नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध कराने की पहली शर्त है। कुछ लोगों का तर्क है कि भेदभाव का निराकरण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष भेदभाव को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए। भारतीय संविधान प्रत्यक्ष भेदभावों को ध्यान में रखते हुए उन कारणों पर भी ध्यान देता है जिससे अप्रत्यक्ष भेदभाव उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु अप्रत्यक्ष भेदभाप पूरी तरह से निर्मूल नहीं किये जा सकते हैं। स्वजाति पोषण, स्वगोत्रीय पोषण, भ्रष्टाचार तथा क्षेत्रवाद कुछ ऐसे घटक हैं जो नीति निर्धारण को प्रभावित करते हैं। परन्तु यह प्रशासन और राज्य व्यवस्था की कुछ ऐसी त्रुटियां हैं जिनको हम प्रातिष्ठानिक भेदभाव नहीं मान सकते। ये व्यक्तिगत घटनायें हैं लेकिन इन्हें सांगठनिक अभिशाप का चोला पहनाना ठीक नहीं होगा। राज्य का यह दायित्व अवश्य बनता है कि वह इस प्रकार के अनैतिक तथा अलोकतांत्रिक व्यवहारों को अपने प्रतिष्ठानों में रोके। गणतंत्र में कई सारे संवैधानिक तथा अतिरिक्त उपाय हैं जिससे ऐसे पक्षपात रोके जायें। इनमें न्यायपालिका की सक्रियता, जनहित याचिका, मीडिया की सक्रियता तथा सूचना के अधिकार के कानून का प्रयोग आदि शामिल हैं।

भारतीय संविधान एक समतावादी समाज के लिए प्रतिबद्ध है। यह सरकार को प्रचलित विषमताओं के निराकरण हेतु विभिन्न उपायों से सक्षम बनाता है। इसमें सबसे अधिक लोकप्रिय तरीका ''सकारात्मक पक्षपात'' है। सकारात्मक पक्षपात का अर्थ होता है सामाजिक तथा आर्थिक रूप से कमजोर और वंचित वर्गों को शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र में विशेषाधिकार देना।

''सकारात्मक पक्षपात'' के पीछे की मंशा स्वतंत्र भारत के प्रारंभिक वर्षों में समाज के वंचित वर्गों को दूसरों के बराबर लाने की थी। इसका जोर शिक्षा, रोजगा तथा स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ उठाने के लिए उनके रास्ते के रोड़ों को हटाना था।

एसे प्रावधानों की चर्चा संविधान सभा में हुई और अनुसूचित जाति/अनुसचित जनजाति तथा कुछ विशेष वर्गों को सकारात्मक पक्षपात की सुविधा दी गई।

बुद्धिमत्ता का निषेध

संविधान सभा का रूख स्पष्ट था कि ऐसे आरक्षण केवल समाज के उन वर्गों तक ही सीमित रहें जो शताब्दियों से भेदभाव का शिकार हुए हैं और जो सामाजिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के भार से दबे हुए हैं। परन्तु औपनिवेशक नीतियों के परिप्रेक्ष्य में संविधान सभा में अल्पसंख्यक अधिकारों पर बहस के दौरान यह आम सहमति बनी कि ऐसे आरक्षण धार्मिक अल्पसंख्यकों को नहीं दिये जा सकते। भारतीय संविधान के निर्माता इस बात पर अडिग रहें कि अल्पसंख्यकता की अवधारणा समाज को बांटने और अंग्रेजों के शासन के विरूद्ध एकजुट होने से रोकने के लिए औपनिवेशक दुराग्रह थी। यह मत सामाजिक इतिहास, वास्तविकता और भारतीयता के खिलाफ था। यह निर्णय इस बोझ पर आधारित था कि पश्चिम के नुस्खे का इस्तेमाल भारत की समस्याओं के लिए ज्यों का त्यों नहीं किया जा सकता। इसीलिए संविधान-सभा ने समाज को धार्मिक वर्गीकरण के आधार पर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों में बांटने की औपनिवेशक योजना को नकार दिया। संविधान सभा ने संविधान के अनुच्छेद 29 और 30 के माध्यम से धार्मिक गोष्ठियों के सांस्कृतिक तथा सामाजिक अधिकारों की तो रक्षा की परन्तु धार्मिक स्तर पर आरक्षण की मांग को ठुकरा दिया[3]।

इसके अलावा भारतीय संविधान के कुछ दूसरे पहलू जैसे-मौलिक अधिकार, सांस्कृतिक अधिकार, संघीय व्यवस्था तथा सर्व धर्म समभाव अलग-अलग सामाजिक तथा सांस्कृतिक वर्गों की समानता और स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा में सहायक है। परन्तु केवल अनुसचित जाति/जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के सामाजिक तथा आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कुछ विशेष अधिकार दिए गये हैं।

संविधान सभा में बहस का स्वर स्पष्ट रूप से धर्म आधारित आरक्षण के विरूद्ध था। यह उदाहरण इस बात को प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त होंगे। ताजमुल हुसैन और डा. एच.सी. मुखर्जी ने बहस के दौरान अल्पसंख्यक अधिकारों पर जो हस्तक्षेप किये वे उल्लेखनीय हैं। उन्होंने औपनिवेशिक वैचारिक ढांचे का विरोध किया। हुसैन ने मुस्लिमों या अन्य किसी धार्मिक समुदाय के लिए 'अल्पसंख्यक' संज्ञा के प्रतिष्ठानीकरण पर चेतावनी दी। ताजमुल हुसैन ने कहा ''हम मुसलमानों को किसी प्रकार की रियायत की आवश्यकता नहीं है। हमें कोई रक्षा कवच नहीं चाहिए। हम कमजोर नहीं हैं। रियायतों से मुस्लिम को लाभ कम हानि ज्यादा होगी। मैं सभी अल्पसंख्यकों से आग्रह करता हूं कि वे एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र के निर्माण के लिए बहुसंख्यक का साथ दें। मैं चाहता हूं कि इस नई व्यवस्था में भारत के सभी नागरिक को यह अधिकार हो कि वे अपनी पूरी संभावना

का विकास कर सकें। और इसीलिए मेरा मानना है कि आरक्षण अल्पसंख्यकों के लिए आत्मघाती होंगे।''[14]

संविधान सभा के उप-सभापति डा. एच.सी. मुखर्जी, जो खुद एक ईसाई थे, राष्ट्र को चेताते हुए बोले- ''अगर हमारा ध्येय एक पंथनिरपेक्ष राज्य बनाना है तो हम धर्म के आधार पर किसी को अल्पसंख्यक घोषित नहीं कर सकते।''[15]

परन्तु, धार्मिक अल्पसंख्यक की संज्ञा और अवधारणा ने राज्य और बौद्धिक वर्ग के एक हिस्से ने बार-बार उछाला। न्यायपालिका ने अपने कई आदेशों में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के बीच में विभाजन को खत्म करने की बात की। परन्तु धीरे-धीरे अल्पसंख्यकवाद शासन का सामाजिक दर्शन और राजनैतिक संवाद का केन्द्र बिन्दु बन गया। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में औपनिवेशक प्रशासान और अल्पसंख्यकता की राजनीति ने यह दुष्प्रचार किया था कि हिन्दू बहुल भारत में अल्पसंख्यकों का अधिकार एक छलावा है। 1871 में बंगाल के मुस्लिमों की स्थिति पर प्रस्तुत की गई हंटर समिति की रिपोर्ट तथा 1939 में पेश की गई मुस्लिम लीग की पीरपुर रिपोर्ट[16] में समान रूप से इस बात का जिक्र है कि मुस्लिमों को अपने अधिकारों से जानबूझकर वंचित किया गया और हिन्दू उनका हिस्सा हड़प गये। विडम्बना यह है कि स्वाधीन भारत में भी अल्पसंख्यक-केन्द्रित संवाद और नीति निर्धारण, औपनिवेशिक कालीन संवाद से ही प्रभावित लग रहा है। इस बात की अनदेखी की जा रही है कि जनप्रतिनिधि चुनने का अधिकार सभी पूर्ण व्यस्क नागरिकों का सशक्तिकरण करता है, चाहे वे किसी भी धर्म के हों।

औपनिवेशिकाकालीन संवाद और अल्पसंख्यकों पर स्वातंत्रोत्तर विचारों ने अल्पसंख्यकवाद की राजनीति की जमीन तैयार की। भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों को किसी भी भेदभाव के खतरे से बचाता है। परन्तु यह गौरतलब है कि वहां अल्पसंख्यक शब्द का अभिप्राय केवल धर्म आधारित नहीं है। लेकिन शब्दों की की अस्पष्टता ने उन्हें संवैधानिक प्रावधानों का लाभ प्रदान किया। अनुच्छेद 25 से 30 तक संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता के प्रावधान हैं। इससे आगे धर्म के आधार पर कोई भी पक्षपात सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है (अनुच्छेद 14 से 18 तक)। परन्तु देश के दूसरे सबसे बड़े धर्म-सम्प्रदाय मुस्लिमों के तुष्टीकरण के लिए शासक वर्ग पंथ निरपेक्षता की यथेष्ठ व्याख्या करता रहा है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल है एक के बाद एक सरकारों ने संविधान के उस प्रावधान को अनदेखा किया जिसमें समान नागरिक संहिता (अनुच्छेद 44) की बात की गई है। समान नागरिक संहिता का उद्देश्य धार्मिक निजी कानूनों का मानकीकरण करना है, जिससे एक सर्वमान्य कानून व्यवस्था बनाई जा सके।

जब हिन्दू समाज के लिए 'हिन्दू कोड बिल' जैसा प्रगतिशील कानून बना तो मुसलमान समाज को यह कहकर छूट दे दी गयी कि उनमें अभी सुधार के लिए सही समय आया है। इस दोहरे मानदंड से वे लोग गुस्साये जिन्होंने इसके पीछे औपनिवेशिकाकालीन राजनीति की छाप देखी। श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने इस नेहरूवादी छद्म धर्मनिरपेक्षता की भर्त्सना करते हुए कहा- 'वे अल्पसंख्यक मुस्लिमों को छेड़ने का मुद्दा नहीं रखते हैं। सारे भारत के मुसलमानों द्वारा इसका इतना विरोध होगा कि सरकार इसे लागू करने का साहस नहीं दिखा पाएगी। परन्तु हिन्दू समाज के साथ किसी भी तरीके से और कैसे भी बर्ताव किया जा सकता है चाहे उसका जो भी परिणाम हो'।[7]

जन्मजात जुड़वां

तथाकथित धर्मनिरपेक्ष सरकारों द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति और राजनीति ने धीरे-धीरे संस्थागत रूप ले लिया। यह संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार के सामाजिक दर्शन का केन्द्र बिन्दु बन गयी। इसने धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धांत को ठुकरा कर केवल इसके प्रतिक्रियात्मक आयाम को ही महत्व दिया। धर्मनिरपेक्षता का सैद्धांतिक पहलू जीवन के लौकिक पक्षों जैसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि का विस्तार देता है तथा अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच की खाई को कम करता है। इसका प्रतिक्रियात्मक पहलू उन सभी पक्षों को निर्बल कर अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच में विभाजन को मजबूत करता है। भारतीय न्यायपालिका ने अपने कई महत्वपूर्ण आदेशों में मौलिक धार्मिक सद्भाव को सुदृढ़ करने की बात की है। परन्तु मार्च, 2005 में मुसलमानों के आर्थिक सामाजिक स्थिति के अध्ययन के लिए एक उच्चस्तरीय समिति बनाकर संप्रग सरकार ने न केवल नीति निर्धारण बल्कि इसके क्रियान्वयन का भी साम्प्रदायीकरण कर दिया। वह उच्चस्तरीय समिति, जिसे सच्चर कमेटी के नाम से जाना जाता है, ने हंटर कमेटी और पीरपुर कमेटी के तर्क दर्शन और निष्कर्षों को अपना लिया। समिति ने धार्मिक आधार पर पृथकीकरण को राष्ट्रीय जीवन के हर पक्ष पर, विशेषकर आर्थिक पक्ष पर आरोपित किया। सच्चर कमेटी ने कहा- ''वंचना, गरीबी और भेदभाव सभी सामाजिक धार्मिक वर्गों में अलग-अलग हद तक हो सकती है। परन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अल्पसंख्यकों की भेदभाव के प्रति एक विशेष संवदेनशीलता है।'' और इसी प्रकार एक विभाजनकारी संवाद और साम्प्रदायिक आधार पर नीति निर्धारण की भूमि तैयार हुई[8]।

सभी सावधानियों को नकारते हुए सच्चर कमेटी ने साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण के लिए रास्ता बनाया। समिति ने यह मानकर कि अल्पसंख्यक शिक्षा और नौकरी के क्षेत्र में गंभीर रूप से वंचित हो रही है, पूरी राजनैतिक व्यवस्था को ही एक प्रकार से कटघरे में खड़ा कर दिया। कमेटी ने इसी अनुमान को आधार बना एक 'समान अवसर आयोग'

गठन करने की सिफारिश की[10]। कमेटी अपने इस अनुमान के पक्ष में कोई यदा-कदा अपवाद की घटना भी पेश नहीं कर पायी जिससे यह साबित हो सके कि मुस्लिमों को अवसर से वंचित किया जा रहा है। कमेटी ने पश्चिमी सभ्यताओं से परिस्थितियों और उदाहरणों को उधार लेकर अपनी बात सिद्ध करनी चाही। पाश्चात्य में तो जातीय, धार्मिक तथा भाषाई अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों द्वारा आक्रमणों का इतिहास रहा है परन्तु भारत में ऐसा नहीं ह। जॉन स्टुआर्ट मिल की ''टायरनी ऑफ मेजोरिटी'' (बहुसंख्यकों की तानाशाही) पश्चिम के अनुभवों के आधार पर लिखी गई थी। सच्चर कमेटी ने कहा-

''कानून की किताबों में एक कहावत है कि न्याय न केवल होना चाहिए बल्कि ऐसा दिखना भी चाहिए कि न्याय हो रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में समिति यह सिफारिश करती है कि सरकार 'समान अवसर आयोग' की स्थापना करे जो वंचित वर्गों की शिकायतों पर ध्यान दे सके[11]। कमेटी ने एक ऐसे पाश्चात्य नमूने को अपना प्रतिमान बनाया जो खुद पश्चिम में ही खारिज हो चुकी है। कमेटी का कहना था- ''यू.के. रेस रिलेशन एक्ट 1976 इस प्रकार के नीति निर्माण का एक उदाहरण है[12]''।

यह विड़म्बना है कि कमेटी को भारतीय परिस्थिति के आंकलन के लिए पश्चिमी अवधारणाओं का सहारा लेना पड़ा। इसका तात्पर्य यह है कि समिति को अंतर-साम्प्रदायिक संपर्कों के आंकलन के लिए भारतीय गणतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास नहीं दिखाई पड़ता। विड़म्बना ही है कि कमेटी दो बातों पर अपना अज्ञान दिखाती है। 1. भारत की परिस्थिति ब्रिटेन की परिस्थिति से संपूर्ण रूप से अलग है। 2. यू.के. रेस रिलेशन एक्ट और उससे उत्पन्न जातीय समानता आयोग (कमीशन ऑफ रेसियल इक्वलिटी) राष्ट्रीय एकता के लिए खतरे माने गये और इसके अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह् लगा। ब्रिटिश राजनीति के गलियारों में इस पर प्रचंड विवाद हुआ। सरकार को ही लगा कि देश की गणतांत्रिक व्यवस्था पर जातीय संवाद एक तानाशाही प्रभाव डाल रहा है। इसलिए उन्होंने तय किया कि इससे पहले कि गणतंत्र और राष्ट्रीय एकात्मा पर आयोग और अधिक कोड़े बरसाये, इसे समाप्त कर देना चाहिए। अंत में आयोग को विसर्जित कर दिया गया[13]। दुर्भाग्य की बात है कि सच्चर कमेटी एक खारिज किये हुए नमूने को इतने संवेदनशील विषय पर अपना प्रतिमान बना रही है।

संवैधानिक उपायों से उन वर्गों को गणतांत्रिक शासन की छत्रछाया में लाना चाहिए जो अभी भी इसके बाहर रह गये हैं। इससे दूसरे वर्गों में आशंका उत्पन्न होने का डर कम हो जायेगा। भविष्य में राजनैतिक तंत्र में दरार डालने वालों से यह सुरक्षित भी रखेगा। भारतीय राज्य में मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 16) के क्रियान्वयन के लिए कदम उठाये गए हैं जिससे सभी नागरिकों का सशक्तिकरण हो सके। भारतीय राज्य ने समाज और अर्थनीति के क्षेत्र में भेदभाव को रोकने के लिए बहुमुखी कदम उठाये हैं।

मानवाधिकार आयोग जैसे राज्य के ऐसे कइ अभिकरण हैं, जिनके जिम्मे यह काम है। समान अवसर आयोग के नाम पर एक समानान्तर संस्था खड़ी कर प्रचलित संस्थाओं पर भी आक्षेप प्रकट किया जा रहा है। वर्तमान में ऐसी कई संस्थायें हैं जो उसी मुद्दे पर काम कर रही हैं जिसके लिए प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' बन रहा है। इसी वजह से यह संदेह उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि प्रगतिशील तथा धर्मनिरपेक्ष नाम की आड़ में साम्प्रदायिकता को हवा तो नहीं दी जा रही है! 'समान अवसर आयोग' की छुपी हुई मंशा तब नजर आती है जब वह कहता है-

''प्रस्तावित समान अवसर आयोग साधारण रूप से अवसरां की असमानताओं से निपटने के लिए हैं, ना कि भेदभाव के शिकार किसी चिन्हित वर्ग (या भविष्य में चिन्ह्वितकिये जाने वाले वर्गों) की समस्या से विशेष रूप से निपटने के लिए''[14]।

दूसरे शब्दों में समान अवसर आयोग की मंशा भेदभाव के शिकार चिन्ह्वितवर्ग जैसे- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अति पिछड़ा वर्ग आदि के हित साधने की नहीं है। रिपोर्ट यह भी स्वीकार करती है कि इन सब वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कई संस्थाएं पहले से ही कार्यरत हैं और उनके कार्यक्षेत्र में घुसपैठ करने का कोई इरादा प्रस्तावित आयोग का नहीं है। स्पष्ट रूप से रिपोर्ट का इशारा अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग, राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय महिला आयोगों, विकलांगों के लिए आयोग इत्यादि की ओर है। समान अवसर आयोग वास्तव में एक नये वर्ग को चिन्ह्वितकरना चाहता है, जो सरकार के इतने विस्तृत प्रयासों के बाद भी 'सकारात्मक कार्रवाई' के लिए चिन्ह्वितनहीं हो पाया है। किसो भी नए वर्ग को पंथनिरपेक्ष-गणतांत्रिक व्यवस्था के दायरे में चिन्ह्विततो किया ही जा सकता है, परन्तु किसी नये पहचान के रूप में नहीं। चिन्होकरण सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति के मानदंड़ों पर हो सकता है। संविधान सभा की बहस से ही अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने की बात उभर कर आयी थी। सच्चर कमेटी और इससे उत्पन्न समान अवसर आयोग, दोनों मिलकर एक नये वर्ग को चिन्ह्वितकरना चाहता है और यह वर्ग नि:संदेह और केवल मुस्लिम सम्प्रदाय ही ह[15]। समान अवसर आयोग का एक मात्र कार्यक्रम अल्पसंख्यकों (मुस्लिम) के लिए शिक्षा और सेवाओं में आनुपातिक प्रतिनिधित्व तैयार करना है। यह औपनिवेशिक ढांचे के पुनरूथान की कोशिश है, असंवैधानिक और विधिवत साम्प्रदायिक आरक्षण को पीछे के दरवाजे से चुपके से प्रवेश कराया जा रहा है।

□

भाग-2

सच्चर कमेटी का अभिप्राय

सच्चर कमेटी भारत के मुस्लिम समुदाय की तुलना स्वर्ण हिन्दू तथा कुछ अन्य हिन्दू पिछड़ा वर्ग से करके उन्हें सामाजिक, शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा चिन्ह्वितकरती है। कमेटी का यह भी मानना है कि मुस्लिम समाज सामाजिक रूप से वंचित है। परन्तु कमेटी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकी कि मुस्लिमों का सामाजिक वंचन अन्य गैर-मुस्लिमों से किस प्रकार से भिन्न है।

19वीं सदी में हंटर कमेटी ने इस बात पर जोर दिया था कि ब्रिटिश भारत के प्रशासन में मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व न के बराबर है। कुछ लोग सच्चर कमेटी से इसकी तुलना करना चाहेंगे[16]। हंटर कमेटी ने मुस्लिमों की दयनीय स्थिति के लिए प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार को दोषी नहीं ठहराया था। बल्कि उसने कहा था कि अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई आधुनिक शिक्षा व्यवस्था मुस्लिमों की अभिलाषा, अभिरूचि और अभीष्ट से मेल नहीं खाती है । कमेटी ने मुस्लिमों के लिए विशेष व्यवहार की बात की। यहीं से 'विभाजन और शासन' की राजनीति प्रारम्भ हुई।

सन् 1938 में 'आल इंडिया मुस्लिम लीग' द्वारा कांग्रेस शासित प्रदेशों में मुस्लिमों की स्थिति पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। राजा सैयद महमूद मेंहदी के नेतृत्व में बनी समिति ने 1937 में कई प्रदेशों में बनी कांग्रेस सरकारों पर यह आरोप लगाया कि मुस्लिमों को जानबूझकर नौकरियों से वंचित किया जा रहा है और शिक्षा का हिन्दूकरण हो रहा है। 'पीरपुर कमेटी' रिपोर्ट के नाम से ख्यात यह रिपोर्ट तथा मुस्लिम लीग द्वारा पेश अन्य तीन रिपोर्टों का अभिप्राय एक ही था। 'कांग्रेस एक हिन्दू साम्प्रदायिक पार्टी है जिसके नेता मुस्लिमों को नौकरियों और शैक्षणिक संस्थाओं से वंचित कर रहे हैं'।' रिपोर्ट ने 'वंदे मातरम्' के राष्ट्र गीत तथा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने पर घोर आपत्ति जताई[17]। 'पीरपुर कमेटी' रिपोर्ट और सच्चर कमेटी रिपोर्ट में कई समानताएं हैं।

	पीरपुर कमेटी रिपोर्ट, 1938	**सच्चर कमेटी रिपोर्ट, 2006**
मुस्लिम समाज का आंकलन	वंचित और शोषित, पुलिस और प्रशासन द्वारा भेदभाव के शिकार, 'हिन्दू राज' से उनके मजहब और संस्कृति को	राज्य द्वारा वंचित तथा समाज के हाशिये पर, पूर्वग्रह से युक्त दुर्व्यवहार, पुलिस तथा प्रशासन द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा

	खतरा।	जाना।
समग्र रूप से भेदभाव	हां	हां
भेदभाव के लिए जिम्मेदार	हिन्दू जनता, कांग्रेस सरकार	हिन्दुओं द्वारा परिचालित शासन
भाषागत भेदभाव	उर्दू के प्रति उदासीनता, हिन्दी को बढ़ावा	उर्दू के प्रति उदासीनता, संस्कृत को वरीयता
शैक्षणिक भेदभाव	शैक्षणिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व बहुत कम।	शैक्षणिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व बहुत कम।
प्रशासनिक भेदभाव	नौकरियों में भागीदारी बहुत कम	नौकरियों में भागीदारी बहुत कम
समाधान	जनसंख्या से अधिक अनुपात में आरक्षण	मुस्लिमों को आरक्षण

मुस्लिमों को आरक्षण

ऐसा लगता है कि सैयद महमूद मेंहदी को सच्चर कमेटी का पूर्वानुमान था या जस्टिस सच्चर ने पीरपुर कमेटी की रिपोर्ट को आत्मसात कर लिया है। दोनों में अंतर यह है कि पहली रिपोर्ट मुस्लिम लीग द्वारा लायी गयी थी, जो खुल तौर पर मुस्लिम साम्प्रदायिक पार्टी थी और देश के विभाजन की अगुआई कर रही थी। सच्चर कमेटी कांग्रेस की नेतृत्व वाली संप्रग सरकार सरकार ने गठित की थी। विडम्बना यह है कि 1938 में यही कांग्रेस पार्टी हिन्दू पार्टी के रूप में मुस्लिम लीगी दुष्प्रचार की शिकार थी। मुस्लिम लीग ने 'हिन्दू फासीवाद' का हौवा खड़ा किया था।

सच्चर कमेटी के कुछ सदस्यों को यह संदेह हुआ कि कुछ गड़बड़ झाला हो रहा है। कमेटी के एक सदस्य डा. राकेश बसंत ने एक ई-मेल में कमेटी अध्यक्ष जस्टिस सच्चर से शिकायत की कि कार्य आवंटन बड़ा ही विसंगति पूर्ण है। कुछ सदस्यों को संदर्भ बिन्दुओं (टर्मस् ऑफ रेफरेंश) के छोटे से हिस्से को काम करने को दिया गया है। कुछ सदस्यों को संदर्भ के बाहर का काम दिया गया है (उदहारणतः सैयद हमीद) और कुछ सदस्यों को कई संदर्भों पर काम करने को दिया गया है[18]।

यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या मुस्लिमों के साथ राज्य संस्थागत रूप से अन्याय कर रहा है और क्या हिन्दू उनके विरूद्ध पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं।

सच्चर कमेटी राज्य द्वारा संस्थागत रूप से भेदभाव को तर्क और उदाहरणां से स्थापित नहीं कर सका। इसके अलावा, सच्चर कमेटी ने उन सामाजिक तथा धार्मिक

कारणों को खोजने की कोई कोशिश भी नहीं की जिसकी वजह से मुस्लिमों का पिछड़ापन जारी है जबकि ईसाईयों, सिखों तथा पारसियों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति अच्छी है। ये भो अल्पसंख्यक हैं और इसके बावजूद वे शिक्षा, राजनीति तथा आर्थिक जगत में अपना मुकाम बना चुके हैं। गौरतलब है कि सच्चर कमेटी संस्थागत भेदभाव का कोई उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकी। केवल अनुमान पर ही कह दिया कि संस्थागत भेदभाव हो रहा हैं कमेटी की रिपोर्ट खुद ही मानती है- ''कोई भी ऐसी खोज नहीं हुई है जो मुसलमानों के प्रति भेदभाव को प्रमाणित कर सके। इस क्षेत्र में शोध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।''[19]। दु:ख की बात है कि रिपोर्ट के लेखकों ने किसी प्रमाण के बगैर ही 'भारतीय राज्य द्वारा मुस्लिमों के उत्पीड़न' को 'प्रातिष्ठानिक नस्लवाद' माना। तथ्यगत प्रमाण के अभाव में उन्होंने इस क्षेत्र में निरंतर शोध की सिफारिश की। यह बड़ी ही विचित्र विसंगति है।

किसी तथ्य और प्रमाण के बिना ही सच्चर कमेटी ने अपनी कल्पना के आधार पर मुस्लिमों के प्रति गैर-मुस्लिमों के रवैये पर एक पूरा अध्याय खर्च किया है। उदाहरण स्वरूप-मुस्लिमों को रोज ही इसका प्रमाण देना पड़ता है कि वह 'राष्ट्रद्रोही' तथा 'आतंकवादी' नहीं हैं[20]। बुर्का, पर्दा, दाढ़ी और टोपी भारतीय मुस्लिमों की पहचान होने के अलावा सार्वजनिक क्षेत्र में उनके लिए चिंता भी उत्पन्न करते हैं। लेकिन सबसे बेतुकी उक्ति तो शायद यहीं थी 'हर दाढ़ी वाले व्यक्ति को आई.एस.आई. का जासूस मान लिया जाता है।' जनता में प्रचलित धारणाओं को कभी नीति-निर्माण का हिस्सा नहीं बनाया जा सकता। अगर ऐसी धारणा जनता में है भी तो सभ्य समाज और इसके विभिन्न अंगों को इसको सुधारना पड़ेगा। यहां एक धर्मनिरपेक्ष समाज तथा राष्ट्रनीति के निमाण में राजनैतिक दलों की भूमिक भी महत्वपूर्ण हो जाती है। समाज में अलग-अलग जाति और समुदायों के स्वास्थ्य से लेकर शिक्षा तक के क्षेत्र में एक-दूसरे पर निर्भरशीलता का उल्लेख नहीं हुआ है। विडम्बना तो ये है कि यह जानते हुए भी कि ऐसी धारणाएं और मिथक जानबूझकर गढ़े जाते हैं[21] कमेटी ने खुद इन मिथकों को घटना मान लिया और उसके आधार पर शासन से उसके निराकरण के लिए सक्रियता की मांग की। उदाहरण के तार पर, कमेटी केन्द्रीय लोकसेवा आयोग के इंटरव्यू और चयन में किसी भी प्रकार के भेदभाव से इंकार करती है। इसके बावजूद यह सिफारिश भी करती है कि अनुसूचित जाति तथा जनजाति से चयनकर्ताओं के आधार पर बोर्ड में मुस्लिम चयनकर्ता भी होने चाहिए[22]।

सच्चर कमेटी सरकार से यह उम्मीद करती है कि वह हर मुस्लिम के प्रति भेदभाव की हर काल्पनिक घटना में हस्तक्षेप करे। यह इसलिए नहीं कि वह घटना वास्तविक है बल्कि आम मुसलमानें के मन में ऐसी धारणा है। सच्चर कमेटी का

दृष्टिकोण संविधान के निर्माताओं के दृष्टिकोण के बिल्कुल विपरीत है। संविधान सभा के एक मुस्लिम सदस्य जेड.एच. लारी ने कहा था- 'मैं उनमें से नहीं हूं जो यह मानते हैं कि अल्पसंख्यकों की सभी शिकायतें चाहे वह मनगढ़ंगत क्यों न हो स्वीकार की जा सकती है। उनके हितों की परवाह तभी तक की जा सकती है जब तक वे राष्ट्रीय हित के साथ सामंजस्य पूर्ण हों। जैसे ही अल्पसंख्यक को दीवार से सट कर खड़ा होना पड़ेगा[23]। इस्लाम के ज्ञाता मौलाना मोहम्मद वहीउद्दीन ने कहा है 'मुस्लिमों के साथ ज्यादातर भेदभाव और उत्पीड़न जो देश में हो रहे हैं वे वास्तव में उनके अपने ही पिछड़ेपन की वजह से है जिसका दोष दूसरों के ऊपर मढ़ दिया जाता है[24]।

दरअसल जिस बात के लिए संवाद की आवश्यकता है वह भारतीय मुसलमानों का सामाजिक, मजहबी दृष्टिकोण और वे कारण हैं जो समाज की मुख्यधारा से जुड़ने में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। वह मुस्लिम मानसिकता जिसकी वजह से मुस्लिम समाज मख़्यधारा से जुड़ने का विरोध करता है उस पर से सच्चर कमेटी ने दृष्टि हटा दी। हंटर कमेटी ने भी बड़ी चतुराई के साथ मुस्लिम पिछड़ेपन का ठीकरा हिन्दुओं के सर फोड़ा था। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि एलफ्रेड टेनीशन ने कहा था- 'वह एक झूठ जिसमें आधी सच्चाई हो, वो सबसे काला झूठ होता है। वह झूठ जो केवल झूठ हो उससे तो सीधे लड़ा जा सकता है। परन्तु वह झूठ जो एक सच्चाई का हिस्सा हो उससे जूझना बड़ा मुश्किल होता है[25]।'

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट ने आंकड़ों की झड़ी लगा दी है, इसमें चालाकी के साथ फेरबदल कर, संदर्भ से बाहर उद्धृत कर और भाषाई चतुराई का सहारा लेते हुए मुस्लिमों को अनुसूचित जाति/जनजाति और अति पिछड़े वर्ग से भी ज्यादा पिछड़ी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। यह सब कारिस्तानी इसीलिए कि मुसलमानों को धोखाधड़ी से सरकारी सक्रियता और आरक्षण का लाभ दिला सकें। सच्चर कमेटी ने बड़ी ही विचित्र कार्य पद्धति अपनाई और उन्हीं दलीलों को सुना जो उसके राजनैतिक-साम्प्रदायिक कार्यक्रम को सिद्ध कर सकें[26]। शक की बुनियाद तब और पक्की हो जाती है जब कमेटी के सदस्य डा. राकेश बसंत यह शिकायत करते हैं कि एक विशाल आंकड़े का विश्लेषण किया जा रहा है। ज्यादातर सदस्यों ने कभी ऐसा विश्लेषण नहीं किया और इस विश्लेषण से क्या हो सकता है और क्या नहीं इसका कोई अंदाजा नहीं है[27]।

एक वंचित समुदाय ने स्वत: ही कुछ ऐसे लक्षण परिलक्षित होंगे जो उन्हें दूसरों से हीन प्रमाणित करें। स्वास्थ्य (शिशु मृत्यु दर, जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, वृद्धि दर), शिक्षा (साक्षरता, शिक्षा प्राप्ति की अवधि, महिला साक्षरता) साधारण जीवनयापन की स्थिति (घनी आबादी का न होना, स्वच्छ पानी के स्रोत तक पहुंच, शौचालय की सुविधा) और आर्थिक स्थिति (कार्यबल में भागीदारी, प्रति व्यक्ति आय)। मानव विकास

के ये सूचकांक अधिकतर मुस्लिमों के अनुकूल हैं और कुछ विषयों में तो ये हिन्दुओं से भी अच्छे हैं[28]।

भारत में कराई जा रही सभी दशकीय जनगणनाओं में यह बात छिपी नहीं है कि मुस्लिमों की जनसंख्या वृद्धि दर हिन्दुओं से कहीं अधिक रही है। पिछले 40 वर्षों में भारत की जनसंख्या में 134 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जबकि मुस्लिम आबादी में यह वृद्धि दर 194 प्रतिशत है। दशकीय जनगणनाओं में मुस्लिमों क वृद्धि दर देश की आम वृद्धि दर से करीब 10 प्रतिशत अधिक है। प्रसिद्ध जनसंख्याविद प्रो. आशीष बास का मानना है कि मुसलमानों में जनसंख्या वृद्धि दर इसीलिए अधिक है कि वे परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने में दूसरों से कम इच्छुक हैं[29]। उलेखमाओं द्वारा जन्म नियंत्रण के विरूद्ध दिये जाने वाले फतवों के कारण ही मुस्लिम समाज में ऐसी सोच बनी हुई है। समग्र प्रजनन दर मुस्लिमों के लिए औसत भारतीय प्रजनन दर से 0.7 से लेकर 1 प्रतिशत तक अधिक है (अलग-अलग आंकड़ों के अनुसार)। वहीं नवजात (0-1 वर्ष तक) मृत्यु दर मुस्लिमों में 59 (प्रति हजार) है जबकि हिन्दुओं में 77 है। अंदाजा लगाया जाता है कि भारत में मुस्लिम जनसंख्या 35 करोड़ के आंकड़े को छूने से पहले स्थिर नहीं होगी। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार मुस्लिमों में नवजात मृत्यु दर और शिशु (1-5 वर्ष तक) मृत्यु दर सभी समुदायों से कम हैं और 1990 से इसमें बहुत अधिक कमी आई है[30]।

औसत साक्षरता क प्रश्न पर हिन्दुओं (65 प्रतिशत) और मुस्लिमों (59.1 प्रतिशत) में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। सच्चर कमेटी के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का अभाव स्कूल शिक्षा के रास्ते में बाधक है[31]। रिपोर्ट के अनुसार 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के करीब एक चौथाई मुसलमान बच्चे कभी स्कूल गये ही नहीं या बीच में ही स्कूल छोड़ दिया (परन्तु हो सकता है वे मख्तव या मदरसा गए)। सच्चर कमेटी रिपोर्ट उन आंकड़ों को उद्धृत नहीं करती है। जिससे यह प्रमाणित होता है कि अनुसूचित जाति/जनजाति अन्य पिछड़े वर्ग और अति पिछड़े वर्ग तथा स्वर्ण हिन्दुओं क पिछड़ी श्रेणियों के पास भी शिक्षा तक पहुंच नहीं है। ग्रामीण भारत में प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाले छात्रों में से केवल 10 प्रतिशत ही स्कूली शिक्षा पूरी कर पाते हैं[32]।

सच्चर कमेटी ने इस बात को स्वीकारा है कि मुस्लिम समाज में लड़कियों का प्राथमिक स्तर से अधिक शिक्षा देने पर विरोध है। इस बात मानते हुए भी कि मुसलमान परिवारों में आम धारणा है कि शिक्षा लड़कियों के लिए आवश्यक नहीं है और ये उनमें गलत मूल्य डाल सकते हैं[33], इसका दोष मुस्लिम मानसिकता या उलेमाओं की मध्ययुगीन सोच को नहीं दिया गया है। इसके बाजय एक बहाना बनाया है कि पुरूष शिक्षकों के बीच में महिलायें असुरक्षित अनुभव करेंगी। यह बहुत ही अतार्किक है क्योंकि बुर्का में

भी मुस्लिम औरतें मुस्लिम मोहल्लें में भी पूरी सुरक्षित नहीं है[34]। सच्चर कमेटी रिपोर्ट यह उम्मीद करती है कि प्रशासन सभी महिला शिक्षकों को केवल मुस्लिम लड़कियों की शिक्षा के लिए नियुक्त करे जिससे मुस्लिम रूढ़िवादियों के भय का निराकरण हो सके। वे मानते हैं कि- 'कॉलेज तक पढ़ी लड़की उन्मुक्त विचारों की हो जाती है, पर्दा नहीं करती और निर्लज्ज हो जाती हैं। जो लड़की अपना शर्मा खो देती हैं वह सब कुछ खो देती हैं। वह पुरूषों के चाल-चलन को खराब कर देती है। उसके लिए पर्दा के बगैर बाहर जाना ठीक नहीं क्योंकि औरत को देखने से ही बुरे विचार आते हैं[35]। तबलीगी जमात और वहाबी मत नव्य् इस्लामिक कट्टरपंथी के उदाहरण हैं जो मुस्लिमों में रूढ़िवाद को नयी हवा दे रहे हैं और मुस्लिम समाज को और अंतर्मुखी बना रहे हैं। समाज के मूल स्रोत से वे पूरी तरह से कटते जा रहे हैं। उनके द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों में भी लड़कियों को बिल्कुल अलग-थलग रखा जाता है। उन्हें हिजाब/बुर्का पहनने के लिए बाध्य किया जाता है और समुदाय के बाहर के जीवन में उनकी भागीदारी सीमित की जाती है। समीरा खान ने लिखा है कि मुस्लिम लड़कियों की 'गतिविधि और उनके व्यवहार पर परिवार के लोग और उनका समुदाय कड़ी नजर रखता है।' इसके अलावा मध्यवर्गीय परिवार भी मुस्लिम लड़कियों को उच्च शिक्षा का अवसर नहीं देते हैं, और मोहल्ले से बाहर काम करने के लिए भी नहीं भेजते। ये लड़कियां कौन सा विषय पढ़ रही हैं और क्या कर रही हैं उस पर पैनी नजर रखते हैं। समीरा खान एक मुस्लिम पिता को उद्धृत करते हुए कहती हैं- 'हम उसे ऐसा कुछ नहीं करने देंगे जो हमारे परिवार और कौम की इज्जत के खिलाफ हो।' समीरा आगे लिखती हैं कि एक उससे भी खतरनाक निगरानी कट्टरवादी मुस्लिम शक्तियों की है जो अपने को मुस्लिम बस्तियों पर हावी कर रही हैं। तबलिगी जमात और वहाबी गुटों का प्रयास एक नये मजहबी कट्टरपंथ को गति दे रहा है जो मुस्लिम समुदाय को और अंतर्मुखी बना रहा है। मुंबई में चार में से दो इस्लामिक अंग्रेजी स्कूल तबलिगियों द्वारा और एक वाहाबियों द्वारा चलाए जा रहे हैं। ये स्कूल लड़कियों को अलग-थलग रखने, बुर्का पहनने का प्रचलन और समदाय के बाहर जीवन को सीमित करने की प्रवृत्ति को और बढ़ावा दे रहे हैं।

कट्टरपंथियों द्वारा महिला संस्थाओं पर फतवा जारी करना भी महिलाओं की गतिविधियों को नियंत्रित करने का एक तरीका है। हाल ही में लड़कियों का लिपिस्टिक लगाने से लेकर बालों में फूल लगाने तक और केबल टी.वी. देखने से लेकर शादियों में संगीत तक करीब सब कुछ पर फतवा जारी किया गया था। इस तरह के फतवे देवबंद के प्रसिद्ध दर-उल-उलुम या किसी स्थानीय मस्जिद या मौलाना द्वारा जारी किए जा सकते हैं[36]।

सच्चर कमेटी मुस्लिम महिलाओं के शैक्षणिक पिछड़ेपन की एक वजह छात्रावासों का अभाव भी मानती है जबकि छात्रावासों की मांग मुस्लिम महिलाओं की तरफ से नहीं आयी है। इसलिए कि आधुनिक पेशेवर जगत में उनकी भागीदारी बहुत ही कम है। क्या सच्चर कमेटी ने ऐसे 'मुस्लिम छात्रावासों' की आवश्यकता अपने मन से ही गढ़ ली जबकि वास्तविकता यह है कि गैर-मुस्लिम महिलाओं में ही छात्रावासों की अधिक मांग है। कई बार छात्रावास उपलब्ध न होने पर महिलायें अपनी हताशा व्यक्त कर चुकी है[37]। सच्चर कमेटी की रिपोर्ट मुस्लिम समाज में स्त्री शिक्षा के प्रति प्रतिकूल रवैया और मुस्लिम समाज का पुरूष प्रधान दुराग्रह में अपनी लड़कियों को पुरूष शिक्षक द्वारा पढ़ाने में कोई आपत्ति नहीं है तो मुस्लिम समाज में ही क्यों? मुस्लिम समाज की जिस मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है उसको सच्चर कमेटी और गाढ़ा बना रही है।

मुस्लिमों का आम जीवन स्तर भी बहुत ज्यादा पीड़ादायक नहीं है। सच्चर कमेटी यह मानती है कि जहां तक मुस्लिमों के आवास स्थलों (पक्का या कच्चा) की स्थिति है यह अनुसूचित जाति/जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों से तुलनीय है और शौचालय की सुविधा तो आम आबादी से कुछ अच्छी ही है। मुस्लिम बहुल गांवों में ढांचागत सुविधाओं की कमी के मजबूत संकेत के बावजूद सच्चर कमेटी एक तर्कहीन निष्कर्ष पर पहुंचती है कि अच्छी खासी मुस्लिम आबादी वाले कुछ प्रदेश जैसे- उत्तर प्रदेश, बिहार, असम और झारखंड में ढांचागत सुविधाओं की कमी हैं। इससे कमेटी ये साबित करना चाहती है कि देश में मुस्लिमों के एक बड़े वर्ग को मूलभूत सुविधायें उपलब्ध नहीं है[38]।

सच्चर कमेटी एक तरफ तो कहती है कि मुस्लिमों को मूलभूत सुविधायें मुहैया नहीं हैं और दूसरी तरफ मानती हैं कि उनके पास ढांचागत सुविधाओं की कोई कमी नहीं है। सच्चर कमेटी का यह तर्क बड़ा ही बेतुका है। यह धोखा आंकड़ों के पूर्वग्रह से युक्त विश्लेषण से हो रहा है। आंकड़े झूठ नहीं बोलते हैं, लेकिन विश्लेषक बोल सकत हैं। सच्चर कमेटी रिपोर्ट बीमारू राज्यों में मुस्लिमों की मूलभूत सुविधाओं की कमी को राष्ट्रीय स्वरूप देना चाहती है, जबकि इन राज्यों में सभी वाशिंदों के लिए मूलभूत सुविधायें राष्ट्रीय औसत से कम उपलब्ध हैं।

मुस्लिमों और गैर-मुस्लिमों के बीच की आर्थिक खाई उतनी चौड़ी नहीं है जितना कि सच्चर कमेटी रिपोर्ट दिखाना चाहती है। यह सही है कि मुस्लिमों में प्रति व्यक्ति आय हिन्दुओं से कम है परन्तु इस तथ्य को इस बात से अलग करके नहीं देखा जा सकता है कि एक आम मुस्लिम परिवार एक आम हिन्दू परिवार से बड़ा होता है। इसके साथ ही मुस्लिम महिलायें जो मजहबी निषेध के कारण बाहर काम करने नहीं जा सकतीं इससे भी मुस्लिम परिवार एक रोजी-रोटी कमाने वाला खो देता है। सच्चर कमेटी रिपोर्ट इस बात को मानती है कि मुस्लिम महिलाओं के घर से बाहर काम के लिए जाने पर

अभी भी बहुत सी पाबंदियां हैं। परन्तु सच्चर कमेटी इस बात को यह कहकर संतुलित करना चाहती है कि पाबंदी केवल मुस्लिम महिलाओं पर नहीं बल्कि उच्च वर्ग की हिन्दू महिलाओं पर भी है[39]। सच्चर कमेटी का यह बयान सच्चाई से कोसों दूर है। उच्च वर्ण की हिन्दू महिलायें सरकारी, वाणिज्यिक तथा शैक्षणिक क्षेत्रों में निपुणता के साथ काम कर रही है। लगता है सच्चर कमेटी की धारणा 19वीं सदी में पंडिता रमाबाई की पुस्तक 'ए हाई कास्ट हिन्दू वूमैन' के आधार पर बनी है। 21वीं सदी उनकी आंखों से निकल गई है।

मुस्लिम समुदाय में शहरी वाशिंदों का प्रतिशत किसी भी दूसरे समुदाय में शहरी वाशिंदों के प्रतिशत से कहीं अधिक है। शहरी जनता आम तौर पर मानव विकास के सूचकांक पर ग्रामीण जनता से बहुत ऊपर होती है। सच्चर कमेटी बार-बार यह दिखाने की कोशिश करती है कि मुसलमानों की शहरी आबादी बाकी सभी समुदायों (अनुसूचित जाति/जनजाति को छोड़कर) से गरीब है। रिपार्ट बताती है कि शहरों में रहने वाले 38.4 प्रतिशत मुसलमान गरीब हैं जो कि अन्य किसी भी समुदाय की गरीब आबादी से अधिक है। सच्चर कमेटी इस बात को छुपाने की कोशिश करती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब की तीव्रता मुस्लिमों में दूसरे समुदायों से (हिन्दू स्वर्ण को छोड़कर) कहीं कम है[40]। सच्चर कमेटी इस बात पर जोर देती है कि शहरी क्षेत्रों में मुस्लिमों का शिक्षा स्तर दूसरे सभी समुदायों से कम है। शहरों में मुस्लिमों की गरीबी में हाल ही में आई कमी को भी कमेटी अपने फायदे में इस्तेमाल कर कहती है- ''शहर और गांवों के बीच काफी अंतर है, और यह पाया गया कि मुस्लिमों और दूसरे समुदायों के बीच आर्थिक अंतर गांव से ज्यादा शहरों में है[41]।'' इन नतीजों में कोई विसंगति नहीं दिखती, अगर हम इस बात को ध्यान में रखें कि शहरों में मुसलमान ज्यादातर शहर के पुराने हिस्सों में (ऐतिहासिक कारणों से) और झुग्गी-झोपड़ियों में (गांव से आये हुए) रहते हैं। स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं के अवसर ऐसी जगहों में सभी के लिए कम होते हैं और मुस्लिम समुदाय में कोई विशेष पिछड़ापन नहीं दिखाई देता।

सच्चर कमेटी मुस्लिम स्नातकों के पेशेवर क्षेत्र, केन्द्र और राज्य सरकार की नौकरियों में पुलिस तथा सार्वजनिक क्षेत्र में कम प्रतिनिधित्व पर दु:ख व्यक्त करती है। परन्तु कमेटी खुद भी मानती है- ''मुस्लिमों का कार्य क्षेत्र में कम सहभागिता का कारण आर्थिक गतिविधियों में मुस्लिम महिलाओं के कम हिस्सा लेने के चलते भी है[42]।'' जस्टिस सच्चर एक जगह (मुस्लिम प्रजनन दर पर) कुछ भड़क कर कहते हैं- ''क्या फर्क पड़ता है देश में कौन से समुदाय की आबादी सबसे अधिक हो जाए[43]।'' उनके ही मानदंड को उन पर प्रयोग करके कहना गलत नहीं होगा कि क्या फर्क पड़ता है कि कौन से समुदाय की सार्वजनिक क्षेत्र में बहुलता है।

मुस्लिम जनसंख्या के मुद्दे पर जस्टिस सच्चर जो झूठा रोष व्यक्त करते हैं वह अपने आप को अधिक 'सेकुलर' दिखाने की होड़ के अलावा कुछ भी नहीं है। वह कैसे मुस्लिमों की बढ़ती हुई जनसंख्या को संदर्भ से बाहर कर सकते हैं जबकि वे स्पष्ट रूप से मुस्लिमों के लिए मजहब आधारित आरक्षण/कोटा की मांग कर रहे हैं। स्वतंत्रता-पूर्व भारत में अंग्रेजों से मिलकर मुस्लिम लीग ने जो साम्प्रदायिक पैंतरा चला था, जो अंत में देश के विभाजन में तब्दील हो गया उसमें समुदायों की तुलनात्मक आबादी को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इस बात को कोरे शब्दों से ढकने की कोशिश राष्ट्र को नुकसान ही पहुंचायेगी।

जस्टिस सच्चर क्यों इस मुद्दे का साम्प्रदायीकरण चाहते हैं? मुस्लिमों का पुलिस या न्यायपालिका में कम होना कोई मायने नहीं रखता जब तक उनके विरूद्ध कोई भेदभाव न हो। धर्म पर आधारित कोई भी आक्षेप, जो कानों सुनी और ठोस सबूत के आधार पर न हो वह हानिकारक है।

धर्मनिरपेक्षता की समस्याएं और साम्प्रदायिक समाधान

सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कई जगह मुस्लिमों के हित में शासन से सक्रियता की अनुशंसा की है। हमारे अनुसंधान में हम कमेटी द्वारा सुझाए केवल कुछ ही प्रावधानों का अध्ययन करेंगे जिसका सरोकार मुस्लिमों की शिक्षा और रोजगार से है। यह इसलिए कि 'समान अवसर आयाग' शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में समान अवसर को सुनिश्चित कर किसी भी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने का दावा करती है[44]

क्र.सं.	कमेटी का निष्कर्ष	सुझाव/अनुशंसा
1.	मुस्लिमों की राजनैतिक क्षेत्र में भागीदारी बहुत कम है और इसीलिए समुदाय विकास की प्रक्रिया में नीतिगत फैसलों को प्रभावित नहीं कर सकते। कमेटी ने इस विषय पर बहुत ही हल्के विचार और टिप्पणी रखे।	
2.	संघ लोक सेवा आयोग/राज्य आयोग/रेलवे बोर्ड तथा पेशेवर शिक्षाक्रम में भेदभाव का आरोप।	समान अवसर आयोग का गठन जो ऐसी शिकायतों पर गौर करेगा। एक पारदर्शी भर्ती व्यवस्था का निर्माण और अनुसूचित जाति/जनजाति के

		विशेषज्ञ प्रतिनिधि की तर्ज पर मुस्लिम विशेषज्ञ प्रतिनिधियों का इंटरव्यू बोर्ड में शामिल किया जाना।
3.	तकनीकी तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही कम मुस्लिम छात्र।	यू.जी.सी. को कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में छात्र जनसांख्यिकी में विविधता लाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और एक वैकल्पिक प्रशासनिक व्यवस्था का भी उद्भव होना चाहिए दाखिले के लिए शैक्षणिक योग्यता में मुस्लिमों के लिए छूट दी जाए और मदरसा से पढ़े हुए मुसलमानों को भी आई.टी. आई. में भर्ती के योग्य माना जाए। मदरसों को उच्च माध्यमिक स्कूल बोर्ड के साथ जोर दिया जाए ताकि छात्र मदरसों से नियमित स्कूलों में तबादला ले सकें। मदरसों से दिये गये प्रमाण-पत्र प्रशासनिक सेवा, बैंक तथा सैन्य सेवाओं में मान्य होने चाहिए।
4.	सेना: समुदायवार कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं है।	अनुमानित रूप से मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व कम है। कमेटी शासन को और सेना को दोषी ठहराती है। सेना में साम्प्रदायिक(मुस्लिम) आधार पर आरक्षण के पक्षधर।
5.	बहुत सी विधानसभा/संसदीय सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं जहां मुस्लिमों की संख्या उनसे ज्यादा है।	परिसीमन को तर्कसंगत बनाया जाए।
6.	मुस्लिमों के विरूद्ध जहां कोई	एक अधिक पारदर्शी चयन व्यवस्था

	भेदभाव नहीं है लेकिन बेहतरी संभव।	का निर्माण और अनुसूचित जाति/जनजाति के विशेषज्ञ प्रतिनिधि के तर्ज पर मुस्लिम विशेषज्ञ प्रतिनिधियों का इंटरव्यू बोर्ड में शामिल किया जाना।
7.	मुस्लिमों को बैंक ऋण कम उपलब्ध। सरकारी कार्यक्रमों में मुस्लिमों को फायदा नहीं पहुंचाया।	मुस्लिमों को ऋण उपलब्धता में प्राथमिकता। मुस्लिम बहुत इलाकों में बैंक की अधिक शाखाएं खोली जाएं। नाबार्ड के अल्प ऋण योजनाओं में मुस्लिमों की सहभागिता को बढ़ाने की नीति। केन्द्रीय सरकार अल्पसंख्यकों विशेषकर मुस्लिमों के लिए योजनाएं प्रायोजित करे।
8.	मुस्लिमों का एक बड़ा वर्ग स्वरोजगार के क्षेत्र में है।	मुस्लिमों की बहुलता वाले व्यवसायों को आर्थिक सहायता दी जाए।
9.	मुस्लिम समुदाय में सामाजिक संगठनों की कमी।	मुस्लिमों को न्यास और संगठन बनाने में प्रोत्साहन। वक्फ संस्थानों और मस्जिद समितियों को प्रोत्साहन।
10.	वक्फ संपत्ति की अवहेलना।	अतिक्रमणकारियों को बेदखल करना और इन स्थानों पर जन सुविधाओं का निर्माण।

1. सच्चर कमेटी ने पाया कि राजनीति में मुस्लिमों की सहभागिता बहुत कम है जिसकी वजह से वे विकास संबंधित नीति-निर्माण को प्रभावित नहीं कर सकते। कमेटी ने कुछ उपायों की बात की जिससे उन्हें गणतांत्रिक प्रक्रिया में जोड़ा जा सके। परन्तु मुस्लिम क्यों मुख्यधारा की राजनीति में नहीं आना चाहते और गणतंत्र की प्रक्रिया में अपना योगदान नहीं देना चाहते? सच्चर कमेटी ने इस बात का उत्तर खोजने के बजाय राजनैतिक व्यवस्था को मुस्लिमों की स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया। दुर्भाग्य से कमेटी के मुस्लिम सदस्यों ने, अध्यक्ष की सहमति से चुनावी प्रक्रिया और नागरिकता को

साम्प्रदायिक रूप से विश्लेषित किया। यह अविभाजित भारत में मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र बनाने के लिए मुस्लिम लीग का यह कार्यक्रम जैसा ही लगता है।

सच्चर कमेटी का एक प्रतिगामी समाधान है अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को 'तर्कसंगत परिसीमन' के माध्यम से अनारक्षित करना जहां मुसलमानों की संख्या अधिक है। सच्चर कमेटी के अनुसार उन आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों से मुस्लिम हितों को हानि पहुंची है। 15वीं लोकसभा चुनाव से पहले परिसीमन के दौरान सच्चर कमेटी इसको लागू करना चाहती थी[45]।

सच्चर कमेटी की यह सिफारिश हमें मॉरले-मिन्टो सुधार (1909) की याद दिलाती है, जिसने साम्प्रदायिक चुनाव क्षेत्रों की अनुशंसा की थी। इससे हिन्दू-मुस्लिम संबंध बेहद खराब हुए और विभाजन का रास्ता बना। मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों के हिसाब से परिसोमन करने पर स्वाभाविक रूप से मुस्लिम ध्रुवीकरण बढ़ेगा, जिससे मुस्लिम एक मुसलमान प्रत्याशी को ही वोट देगा या ऐसे प्रत्याशी को वोट देगा जो कट्टरवादी मुस्लिम कार्यसूची को लागू कर सके। कमेटी का यह सुझाव अप्रत्यक्ष रूप से साम्प्रदायिक है। इसका अभिप्राय है कि कोई हिन्दू नेता मुस्लिम विकास के विरूद्ध होगा। मुस्लिम लीग ने ब्रिटिश काल में कांग्रेस पार्टी और गांधी जी समेत अनेक नेताओं के विरूद्ध कुछ ऐसे ही आरोप लगाये थे। संविधान सभा के सदस्यगण किसी भी साम्प्रदायिक आरक्षा के विरूद्ध थे। महावीर त्यागी के शब्दों में 'जो पृथक निर्वाचन क्षेत्र चाहते हैं उनके लिए यहां कोई स्थान नहीं है। इस अभागे देश में जब पृथक प्रतिनिधित्व की मांग उठी थी तब वह उनकी तरफ से नहीं आयी थी जिनके लिए यह मांग की जा रही थी, बल्कि ये एक शासन की तरफ से फरमाइशी प्रदर्शन था जो अपना काम कर चुकी है और हम सब उसका फल भोग चुके हैं। उनके लिए (मुस्लिम) यह एक गहरा धक्का होगा जिसके साथ देश एकात्मकता का अनुभव नहीं कर सकता। उनको अपने बर्ताव से साबित करना होगा कि जो सीटें उनके पास अभी हैं वे उनके हकदार हैं और इसमें समय लगेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अगर संसद कुछ समय के लिए बिना मुस्लिम प्रतिनिधित्व के चलती है तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा क्योंकि एक या दो चुनावों के बाद, चुनाव योग्यता और लोक सेवा के आधार पर लड़ा जाएगा, समुदाय के आधार पर नहीं[46]।

2. सच्चर कमेटी ने प्रशासनिक सेवा परीक्षाओं में भाग लेने वाले मुस्लिम प्रत्याशियों के विरूद्ध प्रकल्पित पूर्वग्रह पर चिंता व्यक्त की। कमेटी ने अद्भुत तरीके से यह संदेह व्यक्त किया कि उनके विरूद्ध संस्थागत भेदभाव बढ़ता जा रहा है, जबकि इससे पहले ही रिपोर्ट में बताया गया है कि मुस्लिम स्नातकों की संख्या, विशेषकर महिला स्नातकों की संख्या, सभी समुदायों से कम है। स्नातक स्तर की डिग्री प्रशासनिक सेवाओं के लिए न्यूनतम योग्यता है और इसके अभाव में इन परीक्षाओं में भाग लेने वाले

मुस्लिमों की संख्या अवश्य ही कम होगी। परिणामस्वरूप, केन्द्रीय और राज्य आयोग की सेवाओं में उनकी संख्या भी कम होगी। विचित्र बात यह है कि भारतीय मुस्लिम बौद्धिक जगत के एक जाने पहचाने नाम ओमर खालिदी के इस प्रकार के एक विश्लेषण को जस्टिस सच्चर ने नजरअंदाज कर दिया। खालिदी के अनुसार ''जब प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक शिक्षा का आधार कमजोर हो, तो यह आसानी से समझ में आता है कि क्यों मुस्लिम छात्र ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण नहीं होते जिससे उन्हें पेशेवर शिक्षा में दाखिला मिले। कोई आश्चर्य नहीं कि इंजीनियरिंग, मेडिकल और डेन्टल कॉलेजों में मुस्लिमों की भागीदारी उनकी जनसंख्या के अनुपात में नहीं है[47]।''

नीचे दिए हुए लेखा-चित्र से ये साफ हो जाात है कि सच्चर कमेटी का आरोप बेबुनियाद है।

संघ लोक सेवा आयोग परीक्षा 2003-2004 के परिणाम-

वर्ग	कुल संख्या	मुस्लिम प्रतियोगी	मुस्लिम प्रतियोगियों का प्रतिशत
संघ लोक सेवा आयोग की मुख्य परीक्षा में हिस्सा लेने वाले छात्र	11,537	283	4.9
इंटरव्यू के लिए चुने गये	2342	56	4.8
अनुशंसित प्रतियोगी	835	20	4.8
मुख्य परीक्षा में हिस्सा लेने वालों में अनुशंसित प्रतियोगियों का प्रतिशत	7.2	7.1	
इंटरव्यू में हिस्सा लेने वालों में अनुशंसित प्रतियोगियों का प्रतिशत	35.7	35.7	

सच्चर कमेटी रिपोर्ट ने प्रशासनिक सेवा में इस तरह अगड़-बगड़ की बात क्यों की, पता नहीं, जबकि दो मुसलमान संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष रह चुके हैं- ए. आर. किदवई (1973-1979) और जे.एन. कुरैशी (1998-2001)। ऐसे करीब एक दर्जन से ज्यादा मुसलमान हैं जो समय-समय पर आयोग के सदस्य रह चुके हैं। इन लोगों ने समान रूप से इस बात को नकारा है कि मुस्लिमों के प्रति पदोन्नति में भेदभाव बरता जाता है। संघ लोक सेवा आयोग के मुस्लिम सदस्यों ने कुल मिलाकर मुस्लिमों मं शिक्षा के अभाव को ही संघ लोक सेवा आयोग में उनकी कम भागीदारी का कारण बताया[48]। मुस्लिमों के पास कई ऐसे बड़े ओहदे हैं जैसे रेलवे भर्ती बोर्ड के अध्यक्ष मोहम्मद शाफी[49]।

लेकिन इसके बावजूद सच्चर कमेटी मुस्लिमों के विरूद्ध संस्थागत भेदभाव के सिद्धांत पर अड़ी हुई है, जिसको उसने परखा नहीं है। यही कारण है कि वह संघ लोक सेवा आयोग के इंटरव्यू में मुस्लिम विशेषज्ञों की मांग करती हैं, इस आशा में कि इससे प्रशासनिक सेवाओं में मुस्लिमों का प्रतिशत बढ़ेगा। गौरतलब है कि 'समान अवसर आयोग' अल्पसंख्यक मामलां के मंत्रालय के अंतर्गत बनाने का प्रस्ताव है न कि मानव संसाधन मंत्रालय या कार्मिक लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय के अंतर्गत।

तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा में भी मुस्लिमों के कम प्रतिनिधित्व का मुद्दा उठाया गया है। परन्तु यहां भी मूल कारणों की जांच करने के बजाय कमेटी ने पलायनवाद का रास्ता चुना है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्लिम शैक्षणिक पिछड़ेपन पर कमेटी ने अर्धसत्य का सहारा लिया है। 1971 तक जो मुसलमान तकनीकी शिक्षा संपन्न होते थे उन्हें आसानी से पाकिस्तान का वीजा मिल जाता था। कमेटी ने इस बात का उल्लेख तक नहीं किया है। मदरसों में पाठ्यक्रम तथा प्रशासनिक सुधार को समुदाय के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप मानते हुए इसका विरोध किया गया है।

मदरसों का पाठ्यक्रम पुराना, प्रतिबंधक, अवैज्ञानिक तथा कई बार असहिष्णु होता है। परन्तु रूढिवादी मुस्लिम समाज में इसी को प्रोत्साहन दिया जाता है। अरूण शौरी लिखते हैं- ''उलेमा के लिए मजहबी तालीम आधुनिक और तकनीकी शिक्षा से ऊपर है। केवल वही तालीम दी जानी चाहिए जो किसी के दीन को मजबूत कर सके यानि कि वही विषय पढ़ाए जाएं जो कुरान और हदीस मं है। उलेमा इतने मदरसे और मख्तवों के फैलाव के लिए जिम्मेदार हैं।'' एक चर्चित फतवा यही बात करता है- ''स्कूल और कॉलेज में दी जाने वाली शिक्षा इस्लामिक कारनामे, इस्लाम की शख्सियत और इस्लाम

की तहजीब के खिलाफ है। अगर मुसलमान का लड़का इस्लाम की तालीम से महरूम या इसमें कमजोर रह गया तो स्कूल और कॉलेजों में दी जाने वाली नुकसानदेह तालीम और समाज के प्रभाव से वो इस्लाम की सोच और खासियतों के खिलाफ हो जायेगा[50]।

3. सच्चर कमेटी का सबसे घिनौना और अनैतिक पक्ष था सेना में मुस्लिम अफसरों की गिनती पूछा जाना। जनरल जे.जे. सिंह से जस्टिस सच्चर ने सम्पर्क किया था लेकिन उन्होंने उसका उत्तर देने से साफ मना कर दिया। हतोत्साहित हुए बिना जस्टिस सच्चर ने रक्षा मंत्रालय से उन आंकड़ों की मांग की। तीनों सेनाओं के संयुक्त अध्यक्ष ने सच्चर के प्रश्न की भर्त्सना की और कहा- ''थल सेना में चयन केवल योग्यता के बल पर होता है और मुस्लिम समुदाय सहित देश के सभी नागरिकों के लिए इसके द्वार खुले हुए हैं। हम जाति, धर्म या क्षेत्र के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरतते। इसीलिए सेना मुस्लिमों की संख्या पर कोई अलग से आंकड़ा मुहैया नहीं करवा सकती[51]। सेना के मन में जो तीव्र रोष और वेदना का अनुभव हुआ था वह एक सैनिक की जुबानी सुना जा सकता है- ''पूरी प्रक्रिया में एक सैनिक को जो बात सबसे ज्यादा खलती है और आपत्तिजनक लगती है वह यह कि सच्चर सेना को किसी भी दूसर केन्द्रीय सरकार के विभाग के साथ एक कर देखते हैं। क्या श्री सच्चर बता सकते हैं कि कौन से दूसरे संस्थान में देश के लिए शहीद होना उनके कार्य का एक अभिन्न हिस्सा माना जाता है[52]? कमेटी मीडिया में एक साम्प्रदायिक संवाद बनाने में कामयाब रही। कमेटो ने यह कहने की हिमाकत दिखाई कि सेना ने फालतू का विरोध जताया।

इस प्रकार आंकड़ों के चुनिंदा प्रयोग से एक मिथक गढ़ा गया जिसने मुस्लिम समुदाय के शिक्षा, रोजगार तथा आधुनिक बैंकिंग के प्रति सामाजिक-संस्कृति तथा मजहबी परिप्रेक्ष्य को झुठलाने की कोशिश की।

समान अवसर आयोग के पीछे का तर्क

सच्चर कमेटी ने समान अवसर आयोग गठित करने की अनुशंसा की। परन्तु उसके संदर्भ बिन्दुओं से वंचित वर्गों के लिए एक नई संस्था के गठन का निष्कर्ष उभर कर नहीं आता था। इसीलिए 'समान अवसर आयोग' केवल मुस्लिम हितों के प्रति ही प्रतिबद्ध है।

कोई आश्चर्य नहीं हुआ जब केन्द्रीय अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय ने प्रस्तावित आयोग की संरचना तथा कार्यों को निर्धारित करने के लिए एक विशेषज्ञ समिति के गठन हेतु विज्ञापन प्रकाशित किया। विशेषज्ञ समिति की बैठकों के लिए अल्पसंख्यक मंत्रालय ने ही सुविधा प्रदान की। प्रो. (डा.) एन.आर. माधव मेनन की अध्यक्षता में जो विशेषज्ञ

समिति का गठन हुआ उसका उद्देश्य 'समान अवसर आयोग' की संरचना और कार्यों को परखना तथा निर्धारित करना शामिल था। विशेषज्ञ समिति ने अपने सुझाव में यह भी कहा कि केन्द्रीय अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय उस समिति का हिस्सा होगा जो 'समान अवसर आयोग' के सदस्यों का चयन/नियुक्ति करेगा[53]। विशेषज्ञ समिति ने इस बात को नजरअंदाज किया कि अनुसूचित जाति/जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग और महिला आयोग इस देश के 70 प्रतिशत से अधिक 'असमान' नागरिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं[54]। बड़ी ही चतुराई से सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय को 'समान अवसर आयोग' के सदस्यों को नियुक्त करने से अलग रखा गया।

केन्द्रीय अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय का दबदबा 'समान अवसर आयोग' पर बनाये रखने के लिए विशेषज्ञ समिति ने राज्य समान अवसर आयोगों के बजाय क्षेत्रीय समान अवसर आयोगों की अनुशंसा की। इससे 'क्षेत्रीय समान अवसर आयोगों' केन्द्रीय 'समान अवसर आयोग' की शाखाओं के रूप में काम करेंगी और सदस्य नियुक्त करने का अधिकार भी केन्द्रीय अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय के पास रहेगा[55]। अगर विशेषज्ञ समिति राज्य समान अवसर आयोगों की बात करती तो राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के मॉडल का अनुसरण किया जाता। राज्य मानव अधिकार आयोगों में नियुक्ति उस राज्य के मुख्यमंत्री तथा गृहमंत्री की अगुआई में एक चयन समिति करती है[56]।

'समान अवसर आयोग' अपने गठन को इस आधार पर उचित ठहराता है कि समानता की भावना हमारे लोकतंत्र की बुनियाद में है। इस सैद्धांतिक समानता को वह संविधान के मूलभूत ढांचा का हिस्सा मानता है। इसका मानना है- ''समानता का अर्थ केवल कानूनी तौर पर समानता नहीं बल्कि असली समानता है।'' आयोग मुसलमानों के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह खाना हो, पानी हो या रहने के लिए मकान हो इस व्याप्त असमानता से आशंकित है[57] जबकि आयोग गरीबी और वंचना को अपने में ही दुर्भाग्यपूर्ण मानता है। परन्तु अलग-अलग समुदायों और समूहों में इसके असमान वितरण को वह और भी दुखदायी मानता है। इसे अब और साक्षा बोझ नहीं माना जात सकता जैसा कि आजादी के तुरन्त बाद माना जाता था[58]। 'समान अवसर आयोग' अपने कार्यक्रम को शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों तक ही सीमित रखना चाहता है। आयोग का मानना है कि असमान अवसर गैर-अनुपाती वंचना और अन्य तरह के भेदभाव को रोकने के लिए प्रचलित उपायों पर शीघ्र पुनर्विचार की आवश्यकता है[59]। यह अपने कार्यक्षेत्र के विषय में भी कुछ शंकित लगता है क्योंकि यह किसी व्यक्ति विशेष के वंचना तथा भेदभाव संबंधी शिकायतों की सुध नहीं लेगा बल्कि ऐसी शिकायतों को ही दर्ज करेगा जिसमें समूह समानता का आयाम हो। हालांकि कुछ दूसरे आयोगों के कार्यक्षेत्र के साथ समान अवसर आयोग के कार्य क्षेत्र का कुछ दोहरापन/टकराव स्वाभाविक है परन्तु आयोग को लगता है

कि वे इन आयोगों के कामकाज को आगे बढ़ायेंगे। परन्तु यह दुराग्रह है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय मंच से भी कई बार ये चेतावनी दी जा चुकी है कि अलग-अलग मानवता तथा समानता आयोगों का कार्य-क्षेत्र स्पष्ट रूप से चिन्ह्नितहोना चाहिए[60]।

गौरतलब है कि अगर हम समुदाय की पहचान के तर्क को आगे तक खींच ले जायें तो यह गणतांत्रिक मूल्यों के क्रियान्वयन के लिए खतरा बन जाता है। कई बार गणतांत्रिक प्रक्रिया के लिए समुदाय और परम्परा का तर्क विरोधी बन जाता है और यह प्रतिगामी समुदाय के अधिकार की बात गणतांत्रिक अधिकार को रोकता है। इसके अलावा जिस ढंग से विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया और उसके द्वारा अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय का केन्द्रीय और क्षेत्रीय स्तरों पर दबदबा कायम रखा गया, उससे उन गणतांत्रिक प्रतिष्ठानों को क्षीण करने की कोशिश की गई जो अनुसूचित जाति/जनजाति, महिला तथा अल्पसंख्यकों के क्षेत्रों में पहले से ही कार्यरत है। अगर इन संस्थाओं के साथ सही ढंग से परामर्श और समन्वय न किया जाए तो अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय के अंतर्गत काम करने वाला 'समान अवसर आयोग' केन्द्रीकरण और क्षोभ को ही बढ़ावा देगा।

गुप्त एजेंडा

समान अवसर और मानव अधिकार गणतांत्रिक विश्व में अपरिहार्य माना जाता है। एक ऐसा आयोग जिसका कार्य और अधिकार क्षेत्र इतना व्यापक हो कि अदूरदर्शी और संकीर्ण मानसिकता वाले सच्चर कमेटी-जिसका उद्देश्स ही केवल मुस्लिम समाज का हित हो- के अनुशंसा प्र बनाया जाना विसंगति पूर्ण होगा। केवल मुस्लिम अधिकारों की बात करने वाले कार्यकर्ताओं ने ही पहले सच्चर कमेटी फिर समान अवसर आयोग का पुरजोर समर्थन किया था। अनुसूचित जाति/जनजाति तथा महिला अधिकार के क्षेत्र में काम करने के लिए पहले ही अलग-अलग आयोग मौजूद हैं और प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' उनके अधिकार क्षेत्रों का अतिक्रमण करेगा। हमने पहल ही दिखाया है कि कैसे समान अवसरों की बात करने वाला यह आयोग पहले से चिन्ह्नितवंचित समूहों को सम्बोधित नहीं करेगा और उसका एकमात्र उद्देश्य मुस्लिम शिकायतों का निराकरण करना है। इस बात की पुष्टि तत्कालीन अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री अब्दुल रहमान अंतुले के बयास से भी स्पष्ट हो जाती है कि इस आयोग का गठन मुस्लिमों के साथ भेदभाव तथा वंदना की शिकायतों को दूर कने की संप्रग सरकार की नीति का हिस्सा है[61]। इन 'भेदभाव तथा वंचना' की शिकायतों को सच्चर कमेटी ने बहुत ढूंढा परन्तु उसके हाथ ठोस कुछ नहीं लगा।

विशेषज्ञ समिति ने गुमराह करने के लिए जो नीति अपनाई उसके तहत 'मुस्लिम' शब्द का प्रयोग उसके रिपोर्ट में करीब न के बराकर हुआ है जबकि उसका मूल उद्देश्य ही मुस्लिम हितों को साधना था। चाहे यह दूसरे वंचित समूहों के मूल्य पर क्यों न हो। विशेषज्ञ समिति का ढकोसला स्पष्ट हो जाता है। सरकार कैसे यह कहकर नागरिकों को गुमराह कर सकती है कि 'समान अवसर आयोग' राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के तर्ज पर बनाई जायेगी, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग या राष्ट्रीय महिला आयोग के तर्ज पर नहीं। इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि 'समान अवसर आयोग' को सभी के लिए समान रूप से काम करना चाहिए जबकि सच्चाई तो यह कि आयोग का गठन सच्चर कमेटी रिपोर्ट के अनुसार तथा अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय के अंतर्गत हो रहा है।

'समान अवसर आयोग' की पूरे मुस्लिम समाज को पिछड़ा/वंचित प्रमाणित करने की बेताबी इस बात से भी साफ हो जाती है कि उसने सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के मानक सूचकांक के अलावा कुछ और भी नये सूचकांकों का प्रयोग किया है[62]।

जनता के अज्ञान का लाभ उठाकर सच्चर कमेटी ने 'असमान समानता', 'गैर-आनुपातिक वंचना' और ऐसी कई प्रकार की असमानताओं की बात की है जो किसी भी एक सामाजिक-धार्मिक समूह की अकेले की जागीर नहीं है। यह पीछे के दरवाजे से सम्प्रदायवार आनुपातिक प्रतिनिधित्व को मान्यता देने की कोशिश है। जब नागरिकों को उनके अधिकारों का बंटवारा और आवश्यकता पूरी करने का शासन का रिकॉर्ड ही खराब हो तब एक समुदाय की दयनीय स्थिति का हौवा खड़ाकर राज्य सभी के प्रति अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहता है।

विकास का अभिप्राय जनता और राष्ट्र की स्थिति में आकंक्षित परिवर्तन लाना है। विकास जीवन स्तर को सुधारने के लिए होता है। परन्तु विड़म्बना तो ये है कि इसे राजनैतिक समर्थक जुटाने के लिए इस्तेमाल किया गया। इस निहित तर्क को इच्छा अनुसार विकृत किया गया और विकास की अवधारणा को सम्प्रदाय के चश्मों से देखा गया। भारत में यह प्रवृत्ति पिछले कुछ दशकों से बढ़ती जा रही है। राजसत्ता के हाथ में सर्वांगीण विकास की अवधारणा क्षीण हुई है। आवश्यकता इसी ढर्रे पर चलने की नहीं बल्कि इसके विपरीत जाकर समाज में सभी के प्रति पतिबद्धता को पूरा करना है। प्रो. अमर्त्य सेन ने विकास को 'स्वतंत्रता' का पर्यायवाची माना है। उनके अनुसार विकास व्यक्ति को उसके अभावों से मुक्त कराता है और उसके रोजगार की क्षमता को बढ़ाता है। संक्षेप में विकास जीवन की आपदाओं को झेलने की क्षमता देता है। परन्त् यह तभी हो सकता है जब विकास का क्षेत्र तुच्छ राजनैतिक स्वार्थों से मलिन न हो।

विकास, रोटी और पानी का प्रश्न, एक लौकिक मुद्दा है। एक गणतांत्रिक व्यवस्था में एकीकृत और समग्र विकास, समुदायों और क्षेत्रों के बीच में असामान्य वृद्धि को संतुलित करता है। 'समान अवसर आयोग' समग्र शिक्षा व्यवस्था, प्रतियोगी परीक्षा तथा उद्योगों का साम्प्रदायीकरण करेगा। मुस्लिमों को एक अलग चिन्ह्नितसमूह घोषित करने का प्रयास, समाज और राजनीति में दरार पैदा करेगा। विकास के संवाद में धार्मिक समुदायों की भावना को धकेलने का प्रयत्न खतरे से खाली नहीं है। यह देश की एकता और अखंडता को भारी क्षति पहुंचाएगा और विभाजन की तीखी यादों को पुनर्जीवित कर देगा। प्रो. दीपंकर गुप्ता के अनुसार जब अलग-अलग धर्म समूह एक दूसरे के करीब रहते हैं और सीमित संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं तो उनको धार्मिक पहचान और भी तीक्ष्ण, ध्रुवीकृत और तीव्र हो जाती है जो धार्मिक भेदों को और बढ़ा देती है। इसीलिए उनका कहना है कि विकास के प्रकल्प में धर्म समूह और परिचय कोई मुद्दा नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसा करना खतरे से खाली नहीं है। इसका एक खतरा ता यह है कि नागरिकता की अवधारणा का ही अवमूल्यन होगा जबकि इसको और सशक्त बनाने की आवश्यकता है[63]। परियोजनाओं, नीति-निर्धारण और क्रियान्वयन, बैंकिंग और प्रशासनिक सेवाओं के साम्प्रदायीकरण का अर्थ होगा एक राष्ट्रवाद, सर्व धर्मसमभाव और गणतांत्रिक राज्य नीति के विपरीत जाना।

वंचित समूह चिन्ह्वित करने की पहेली

प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' बिल वंचित समूहों को ऐसे व्यक्तियों के समूह के रूप में चिन्ह्वित करता है जो खुद को या तो अपने नियंत्रण से बाहर की परिस्थिति के सामने विवश पाते हैं या कानून तथा सरकार द्वारा मुहैया कराये गये अवसरों का सही रूप से लाभ नहीं उठा पाते हैं[64]। हालांकि यह परिभाषा अपने में अस्पष्ट है परन्तु लाभार्थी का परिचय स्पष्ट है। इसलिए कि 'समान अवसर आयोग' ने अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिला और विकलांगों को अपने कार्य क्षेत्र से बाहर रखा है। इसका कारण बताया गया है वह पहले से वंचनाग्रस्त समूहों के रूप में चिन्ह्वितहैं। 'समान अवसर आयोग' कहता है कि वे पहले से चिन्ह्वित समूहों तक बंधे हुए नहीं रह जायेंगे। 'समान अवसर आयोग' के द्वार किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए खुले होने चाहिए जो किसी वर्ग या समूह से होने के कारण अपने आप को अलाभान्वित, वंचित तथा भेदभाव ग्रस्त पाता है। किसी भी समूह द्वारा असमानता या अवसरहीनता की शिकायत दर्ज कराने की स्थिति में 'समान अवसर आयोग' तर्कनिष्ठ दृष्टिकोण रखने का वायदा करता है।

'समान अवसर आयोग' व्यवस्था द्वारा अवहेलित व्यक्ति मात्र को न्याय दिलाने में दिलचस्पी नहीं रखता। वह केवल समूह (एक विशेष समूह) की ही शिकायतें और

गिले-शिकवे दूर करवाने में दिलचस्पी रखता है। सच्चर कमेटी रिपोर्ट ने एक सभ्य समाज के नागरिकों के परिचय को कुछ धार्मिक-सामाजिक समूहों में बांट दिया है। इसने समाज में एक नये बंटवारे की नींव डाली है जो इस धारणा पर आधारित है कि अलग-अलग समूह की विकास के प्रति अलग-अलग दृष्टि होती है और राज्य उनको अवसर दिलाने में भेद-दृष्टि रखता है। संप्रग सरकार का सामाजिक दर्शन मुसलमानों को व्यवस्था के शिकार के रूप में चिन्ह्नित करना चाहता है। सच्चर कमेटी के तत्वाधान में प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' यह मान रहा है कि केवल मुसलमान समुदाय ही उससे न्याय की गुहार लगायेगा। कोई और परिचय आयोग के लिए प्रासांगिक नहीं है, यहां तक कि जाति परिचय भी नहीं। तो प्रश्न यह खड़ा होता है कि क्या आयोग में यह नैतिक चेतना होगी कि वह आर्थिक रूप से पिछड़े हिन्दुओं की कोई शिकायत भी सुने? उदाहरण के तौर पर क्या गरीबी से तंग उन ब्राह्मणों की व्यथा सुनी जाएगी जो दिल्ली के 50 सुलभ शौचलय में काम कर रहे हैं?[65]''

'समान अवसर आयोग' की स्थापना के लिए जो जल्दबाजी दिखाई गई उसे स्वाधीनता के उपरांत शासक दल कांग्रेस पार्टी द्वारा निभायी गयी भूमिका की रोशनी में देखना पड़ेगा। औपनिवेशिक अतीत से सूत्र उधार लेकर और पार्टी ने देश को 'अल्पसंख्यक' और 'बहुसंख्यक' में बांटा। भारतीय जनमानस का इन दो विरोधी खेमों में पृथकीकरण कांग्रेस को चुनावों में लाभ पहुंचाता रहा है। हाल ही में (2009) में संपन्न हुए आम चुनावों में कांग्रेस ने मुस्लिमों के लिए धर्म आधारित आरक्षण की बात कर खूब वोट बटोरे। आज के कांग्रेस नेताओं ने यह नहीं समझा कि स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्रता के उपरांत कांग्रेस नेताओं ने अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई धर्म आधारित आरक्षण(पृथक चुनाव क्षेत्र आदि) को पूरी तरह से ठुकरा दिया था।

'समान अवसर आयोग' की बात कर राज्य भारतवासियों के प्रति प्रतिबद्धता को छुपाने तथा अपनी विफलता से जनता का ध्यान हटाने की कोशिश कर रहा है। यह कांग्रेस पार्टी और उनके समर्थकों की राजनैतिक दीर्घायु का एक प्रयत्न है। लेकिन इससे लोगों के बीच जो विभाजन होगा, इससे वह लापरवाह है। यानी भावी खतरों को आमंत्रित किया जा रहा है।

जब पहले से ही कई ऐसे आयोग तथा प्रतिष्ठान समानता के मौलिक अधिकार की रक्षा हेतु उपस्थित हैं तब 'समान अवसर आयोग' के उद्देश्य पर ही संदेह उत्पन्न होता है। भारत का संविधान खुद ही भारत के नागरिकों के धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के प्रति वचनबद्ध हैं। हमें राजसत्ता का पूर्ण अवलोकन करना पड़ेगा। अगर यह अल्पसंख्यकों के प्रति दुर्व्यवहार का हौवा खड़ा करता है तो वह अल्पसंख्यकों में डर का माहौल तैयार करेगा और इस प्रकार की भयग्रस्त मानसिकता उनके राजनैतिक और सामाजिक व्यवहार

को प्रभावित करेगा। दुर्भाग्य से 'समान अवसर आयोग' मुस्लिमों की मानसिकता को और संकुचित करेगा।

इससे 21वीं सदी में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की कोई भलाई नहीं होगी और न ही यह देश के राजनैतिक तंत्र के हित में होगा। यह केवल समुदायों के बीच में टकराव और दरार पैदा करेगा। ऐसा इसलिए हो रहा है कि इस विषय पर समाज के अंदर प्रत्येक स्तर पर और अलग-अलग गणतांत्रिक मंचों पर संवाद नहीं हो रहा है। कांग्रेस शासित भारतीय राज्य मुस्लिमों का तुष्टीकरण कर उनके मन में हिन्दू बहुल भारत का भय पैदा कर, उनको अपना बंधुआ वोट बैंक बनाना चाहती है। यह 1947 के उपरांत कांग्रेस के वर्चस्व को कायम रखने की नीति का ही अनुसरण है।

कई राज्यों में ब्राह्मणों की स्थिति दयनीय है। जे. राधाकृष्णा के एक शोध के अनुसार आंध्र प्रदेश में 5 से 18 साल के आयु वर्ग में पढ़ने वाले 44 प्रतिशत ब्राह्मण छात्र बीच में ही पढ़ाई छोड़ देत हैं[66]।

जाहिर है समकालीन भारत में विभिन्न धार्मिक-सामाजिक वर्गों की तुलनात्मक स्थिति वह नहीं रह गयी है जो हम पारम्परिक रूप से मानते चलते आ रहे हैं। आवश्यकता से अधिक सक्रियता समाज को असंतुलित बना सकती है। आवश्यकता है कि शिक्षा और रोजगार के उपक्रम भारत की बढ़ती जनसंख्या के अनुसार बढ़ें न कि सीमित उपकरणों का और अधिक बंटवारा हो। दूसरी स्थिति में न तो सामाजिक न्याय होगा और न ही राष्ट्र का हित सधेगा। गरीबी का चेहरा बहुत तेजी से बदल रहा है। गरीबी की तुलना हम सहस्रबाहु दानव के साथ कर सकते हैं जो सभी तरफ अपना हाथ बढ़ाता है, और एक क्षेत्र में एक समूह को अपने चपेट में लेता है तो दूसरे क्षेत्र में किसी और को। कोई भी समूह गरीबी के इस अभिशाप से मुक्त नहीं है[67]।

परन्तु 'समान अवसर आयोग' तो पहले से ही केवल मुस्लिमों को और शायद कुछ अन्य अचिन्हित समूहों को अपना लक्षित कार्यक्षेत्र बना चुका है[68]।

क्या समान अवसर आयोग को मुस्लिम आरक्षण पर संवैधानिक अधिकार प्राप्त है?

नि:संदेह भारत के संविधान निर्माता किसी भी प्रकार के साम्प्रदायिक आरक्षण के घोर विरोधी थे। नौ न्यायधोशों की खंडपीठ वाले एस.आर. बोम्मई बनाम भारत सरकार मामले में न्यायमूर्ति अहमदी ने कहा था- ''क्योंकि मुस्लिमों के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र साम्प्रदायिक और पृथ्कतावादी प्रवृत्ति के लिए जिम्मेवार था, सलाहकार समिति इस नतीजे पर पहुंची है कि अनुसूचित जाति/जनजाति के अलावा किसी भी प्रकार

के अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण नहीं होना चाहिए'' (पैरा 26)। संविधान विशेषज्ञ दुर्गादास बासु भी उस विषबेल के पुनरूत्थान के विरूद्ध हैं, जो एक समय पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमसे मैक्डोनल्ड द्वारा कम्युनल अवॉर्ड के नाम पर दिया गया था और जिसकी वजह से देश का विभाजन हुआ[69]।

स्वतंत्र भारत के संविधान में भारत को एक राष्ट्र माना गया है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता और समानता की बात कही गयी है। इसके अलावा नागरिको के बीच मैत्री/भाईचारा बढ़ाने की बात भी की गई है जोकि व्यक्ति की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए होनी चाहिए। अगर धर्म के आधार पर कोई भी आरक्षण होता है तो वह संविधान की न केवल मूल भावना को आहत करेगा बल्कि कुछ विशेष अनुच्छेद 15(1) और 16(1)-(2) का भी विरोध करेगा[70]। क्योंकि दूसरे धर्मों में, जैसे ईसाई, इस्लाम आदि जातिप्रथा में विश्वास नहीं रखते हैं, इसीलिए सरकार ने उन धर्मों में धर्मांतरित हुए हिन्दुओं के लिए कोई आरक्षण की सुविधा नहीं दी है। अनुसूचित जाति/जनजातियों को दिये जाने वाले आरक्षण केवल उनकी अभी की स्थिति के लिए नहीं बल्कि ऐतिहासिक रूप से उनकी सामाजिक-आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक स्थिति को देखते हुए दी गई है। ये सुविधाएं ईसाई तथा इस्लाम में धर्मांतरित हुए अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को नहीं दी जाती। केवल उनकी वर्तमान स्थिति उनको राज्य की तरफ से कोई सुविधा दिलवा सकती है और वह सर्व धर्मसंभाव पर आधारित होनी चाहिए।

परिस्थितियों पर इतिहास का बोझ इसलिए होता है क्योंकि सामाजिक-आर्थिक ढांचे का प्रभाव रह जाता है। उस कालखंड के आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के परिणाम स्वरूप कुछ समूहों को स्थायी रूप से हानि पहुंची[71]।

भारत में 'सकारात्मक पक्षपात' इस सत्य पर आधारित है कि अनुसूचित जाति और जनजाति समाज हमेशा से समाज की वरीयता में निम्नतम स्थिति में रहे हैं और सामाजिक तथा भावनात्मक भेदभाव का शिकार रहे हैं। जैसे कि लक्ष्मण श्रवण भाटकर ने संविधान सभा में कहा था- साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व संविधान से निर्मूल कर दिया गया है और अनुसूचित जातियों के लिए 10 वर्षों के लिए आसन आरक्षित किये गये हैं- क्योंकि अनुसूचित जाति गरीब हैं, अशिक्षित हैं और समाज में उनकी स्थिति और वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था को देखते हुए उनको कुछ विशेष सुविधा न देना अनैतिक होता[72]।

मार्क्सवादी इतिहासकार इरफान हबीब के अनुसार- ''वर्ण एक अमानवीय व्यवस्था थी जिसने लंबवत और क्षैतिज रूप से असमानता का निर्माण किया''। परिस्थितियों के ऐतिहासिक बोझ का अभिप्राय शताब्दियों से होने वाले सामाजिक और आर्थिक भेदभाव से है, जिसने इन वर्गों को एक प्रकार से अपंग बना दिया ताकि वे समाज के तथाकथित

उच्चवर्गों–जिनमें शिक्षा की परंपरा थी–के साथ योग्यता आधारित परीक्षा में प्रतिस्पर्धा न कर सकें। आरक्षण एक प्रकार से एक ऐतिहासिक मुआवजा है ताकि वे वर्ग अपनी पुरानी अक्षमताओं से निकल सकें और इसके साथ ही संपन्न तथा वंचित समूहों के बीच की खाई को भी कम किया जा सके।

सैद्धांतिक रूप से आरक्षण के विरोधी होते हुए भी संविधान सभा के सदस्यों ने उस परिस्थिति में आरक्षण को आवश्यक ठहराया। सरदार पटेल ने अनुसूचित जाति तथा जनजाति को आरक्षण सुविधा उपलब्ध कराने के पक्ष में यह तर्क दिया था– ''स्थाई रूप से हम यह मानकर चल सकते हैं कि बहुसंख्यक समुदाय का यह दायित्व है कि वह अपनी उदारता से अल्पसंख्यकों में विश्वास का भाव तैयार करें और उसी प्रकार से अल्पसंख्यक समुदायों का भी यह कर्तव्य है कि वह अतीत को भूलकर यह सोचे कि विदेशियों द्वारा निष्क्षता के नाम पर समुदायों के बीच में संतुलन बनाने के लिए जो उपाय किये गये थे उसे देश ने कितना झेला–दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में यह सबसे हित में होगा कि वह भूल जायें कि देश कोई बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक है और यह सोचे कि पूरा भारत एक समुदाय है''।

जैसा कि ऊपर कहा गया कि मुस्लिम आरक्षण का विचार साधारण सदस्य और राष्ट्रवादी मुस्लिम दोनों ने ही खारिज कर दिया था। मद्रास प्रेसीडेंसी के एक अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि एस. नागप्पा ने अपने विचार इस प्रकार से व्यक्त किये थे– ''हमें नहीं लगता कि हमें आरक्षण इसलिए दिया जा रहा ह कि हम धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक हैं। हम धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक नहीं हैं, हम आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक तौर पर अल्पसंख्यक हैं''। उन्होंने बहुत साफगोई से कहा– 'हमारे त्याग को देखिये, हम सदियों से दुर्व्यवहार का शिकार होते चले आ रहे हैं परंनु हमने हमारे धर्म को नहीं छोड़ा है– हां, ऐसे कुछ अपवाद हैं जो धर्मांतरित हो गये। लेकिन आज भी सात करोड़ अनुसूचित जाति, जो हिन्दू हैं वे सहन करने की भावना, त्याग और परिश्रम के पर्याय हैं जिसके चलते यह समुदाय जाना जाता है।'' श्री नागप्पा ने मुस्लिमों के उन प्रयत्नों की भर्त्सना की जिससे वे अनुसूचित जातियों के लिए दिए जाने वाले आरक्षण का हिस्सा हड़पना चाहते थे। उन्होंने याद दिलाया कि मुसलमानों के साथ ऐतिहासिक रूप से कोई अन्याय नहीं हुआ है– 'आप लोग आक्रांता हैं, बाहर से आये हुए हैं और आपका हित इस देश से उस प्रकार जुड़ा हुआ नहीं है, जैसे कि हमारा। हम वे लोग हैं जो देश की सारी राष्ट्रीय संपत्ति के निर्माता हैं, चाहे वह कृषि क्षेत्र में हमारे श्रम से हो या औद्योगिक क्षेत्र में[73]। मुस्लिम सदस्य ताजमुल हुसैन ने भी मुस्लिमों को अनुसूचित जाति और जनजाति स तुलना करने का विरोध किया, 'हम अनुसूचित जाति की तरह कमजोर नहीं हैं, हम अशिक्षित नहीं हैं, हममें तहजीब है और हम अपनी सहायता खुद कर सकते हैं। हम

आयेंगे तो खुली प्रतिस्पर्धा से, अपने आप को समय के अनुकूल कीजिए- मैं बहुसंख्यकों से यह कहता हूं कि मुस्लिमों पर आरक्षण मत थोपिए। अगर आप इमानदारी से मानते हैं कि आरक्षण गलत है तो खुदा के लिए हमें आरक्षण मत दीजिए। हमें बहुसंख्यक मत बनाइये, हमें समान रूप से अपना सहभागी बनाइए। भारत में कोई बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक नहीं होगा[74]।

क्योंकि समान अवसर आयोग भी 'परिस्थितियों के ऐतिहासिक बोझ' परीक्षण से बंधा हुआ है, यह साफ है कि मुसलमान किसी भी प्रकार से सरकारी सक्रियता आधारित कानून के दायरे में नहीं आ सकते क्योंकि मध्य युग के विशाल कालखंड में नये धर्मांतरित सहित मुसलमान एक विशेषाधिकार संपन्न वर्ग था। सभी हिन्दू चाहे वे किसी भी जाति के हों, धीम्मी या दूसरे दर्जे के नागरिक थे, जिन पर कम से कम 20 प्रकार की अपमानजनक पाबंदियां थीं[75]। 'समान अवसर आयोग' के प्रारूपकारों ने कोई भी ऐसा तर्क नहीं दिया है जो मुस्लिमों पर परिस्थितियों का ऐतिहासिक बोझ के समर्थन में हो। प्रमुख समाज शास्त्री आन्द्रे बैते सकारात्मक प्क्षपात को केवल हरिजन और आदिवासियों तक ही सीमित रखने की सलाह देते हैं। इसलिए कि उन्होंने सामुदायिक रूप से सामाजिक दुर्व्यवहार और मानसिक पीड़ा भोगी हैं जो उन्हें कुछ विशेष उपायों, जैसे- नौकरियों में आरक्षण आदि के हकदार बनाते हैं।

'समान अवसर आयोग' अपने ही शब्दों प्र ध्यान दे जो स्पष्ट रूप से कहते हैं- ''अवसरों की समानता से परिणामों की समानता उपलब्ध हो भी सकती है और नहीं भी। परन्तु इसका सिद्धांत यह है कि एक ईमानदारी की दौड़ हो जिसमें कुछ प्रतियोगियों को इनाम मिले और बाकियों को नहीं। असमान पुरस्कार नैतिक रूप से स्वीकार हैं- यहां तक कि वांछनीय भी हैं- जब तक सभी को दौड़ में समान रूप से भाग लेने का मौका मिले और ये असमान प्रतिफल केवल उनकी योग्यता और प्रत्यत्न की असमानता की वजह से ही हो[76]।

उनके जटिल सामाजिक स्तरीकरण और वर्गीकरण के बावजूद भारत के मुसलमानों को संतोषजनक अवसर मिले। परन्तु उन अवसरों का सही तरह से उपयोग करने में पीछे रह गए। उनके समाज में व्याप्त कट्टरता और रूढ़िवादी ने अवसरों से वंचित कर दिया। हमें यहां कोई विसंगति नहीं दिखाई पड़ती। अवसरों की समानताओं से परिणाम की समानता सही लगती है।

समान अवसर आयोग और अंतर्राष्ट्रीय रूझानः तीव्र विरोधाभास

समान अवसर आयोग के बिल के प्रारूपकारों के अनुसार उन्होंने आयोग की रूपरेखा बनाने के लिए आंस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, फ्रांस, हांगकांग, दक्षिण अफ्रीका, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिष्ठानों का अध्ययन किया।

देश का नाम	प्रतिष्ठान	अधिकार
ऑस्ट्रेलिया	ह्यूमन राईट्स एण्ड इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन (एच.आर. इ.ओ.सी., ऑस्ट्रेलिया)	रोजगार, शिक्षा, वस्तु और सेवाओं का प्रावधान और सहायता, आवास, खेल, मानव अधिकार
हांगकांग	इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशीन (इ.ओ.सी.)	रोजगार, शिक्षा, वस्तु और सेवाओं का प्रावधान, परिसरों का प्रावधान, वोट डालने की योग्यता/सलाहकार समितियों में निर्वाचित होने की योग्यता, सरकार की गतिविधियां
ब्रिटेन	इक्वल एण्ड ह्यूमन राईट्स कमीशन (इ.एच.आर.सी.)	स्वास्थ्य तथा सामाजिक देखभाल/आवास तथा संपत्ति, न्याय तथा कानून व्यवस्था, शिक्षा, दुकानें और सेवायें यातायात, रोजगार मानव अधिकार
संयुक्त राज्य अमेरिका	इक्वल एमप्लाइमेंट अपोर्चुनिटि कमीशन (इ.इ.सी.)	रोजगार (आयु, अक्षमता, मूल राष्ट्रीयता धर्ममत, लिंग संबंधी भेदभाव का निराकरण)
भारत	इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन (इ.ओ.सी.)	शिक्षा, रोजगार

सच्चर कमेटी रिपोर्ट ने सुझाव दिया है कि प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' ब्रिटेन के कमीशन फॉर रेशियल इक्वलिटी के अनुभवों पर बनाया जाए ताकि इसके गठन का ध्येय जमीनी स्तर पर फलीभूत हो सके[77]। यह सुझाव पूरी तरह से निरर्थक है; क्योंकि भारत में सामाजिक तथा राजनैतिक पटल पर नस्लभेद जैसी कोई समस्या नहीं है। दो बिल्कुल ही भिन्न समाजों में तुलना करके एक ही निष्कर्ष पर पहुंचना, तथ्यों को विकृत

करके अपने ही पूर्वग्रह को स्थापित करना असल में दो समुदायों के बीच द्वेष की भावना उत्पन्न करने का प्रायस के अलावा और कुछ भी नहीं है। सच्चर कमेटी पूर्वग्रह से प्रेरित होकर भारत में अंतः- समुदाय संबंधों को अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न का मामला दिखाना चाहती है। यह राष्ट्र को विरोधी खेमों और वर्गों में बांटने की साजिश है।

विशेषज्ञ समिति का दावा है कि उसने अंतर्राष्ट्रीय रूझानों का अध्ययन किया है। यह दावा सरासर गलत है। 1982 में कमीशन फॉर रेशियल इक्वलिटी के विलोप क लिए श्री ई वोर स्टैनब्रुक ने हाउस ऑफ कॉमन्स (ब्रिटिश संसद की लोकसभा) में एक महत्वपूर्ण बिल प्रस्तुत किया[78]। उन्होंने आयोग के विषय में कड़ा रूख अपनाते हुए कहा कि- 'आयोग का उद्देश्य हमारे भिन्नता पर बल देना है। यह समरसता को प्रोत्साहित करने के बजाय हानि पहुंचाता है, और आयोग अश्वेत नागरिकों को उस अवसर से वंचित करता है जो वो चाहते हैं- यानि कि देश का समान नागरिक बनना। वह बिल संसद में उस समय तो पराजित हो गया परन्तु उसमें जो प्रश्न उठाये गए थे वे भारत में प्रस्तावित समान अवसर आयोग तथा अल्पसंख्यक आयोग, जो अल्पयंख्यकों और मुख्यधारा के बीच ऐसी ही नकारात्मक भूमिका निभा रही है, के लिए प्रासंगिक है।

जो स्टैनब्रुक ने कहा वह भारत के परिप्रेक्ष्य में भी लागू होती है जहां ऐसे अल्पसंख्यक आयोग और संस्थायें मुस्लिमों की राष्ट्र के साथ एक होने की प्रवृत्ति को नकारात्मक दिशा में ले जाती है।

दूसरी बात, सच्चर जिस ब्रिटिश व्यवस्था की महानता का पाठ पढ़ा रहे थे उस ब्रिटेन में एक सरलीकरण किया गया। कमीशन फॉर रेशियल इक्वलिटी, विकलांगों के लिए बनी डिसएविलिटी कमीशन और इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन (समान अवसर आयोग) को एकीकृत कर एक इक्वलिटी एण्ड ह्यूमन राइट्स कमीशन (समानता और मानवाधिकार आयोग) का गठन किया गया[79]। विशेषज्ञ समिति ने इस घटनाक्रम को नजरअंदाज करके अलग से एक 'समान अवसर आयोग' की बात की। जबकि निष्कर्ष यह निकलता है कि समानता का सिद्धांत राष्ट्रीय मानव आयोग के कार्यक्षेत्र में होना चाहिए। अगर हम ब्रिटेन के उदाहरण का अनुसरण करें तो हमें न केवल प्रस्तावित समान अवसर आयोग बल्कि देश में कार्यरत मानवाधिकार आयोग, महिला आयोग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और यहां तक कि अनुसूचित जाति/जनजाति आयोग को मिलाकर एक एकीकृत आयोग बनाना चाहिए।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड सभी ने मानवाधिकार और समानता आयोगों को संयोजित कर लिया है। दुनिया का रूझान एकीकृत आयोगों की तरफ है, जबकि 'समान अवसर आयोग' भारत में आयोगों की संख्या बढ़ाने में लगा हुआ है। एकीकृत आयोगों

का लाभ कुछ इस प्रकार से समझा जा सकता है- ''एकीकृत आयोगों में वो क्षमतायें हैं कि वे विभिन्न मंच पर समानता के मूल सिद्धांत को स्थापित कर सकें। हालांकि इसकी कुछ शर्तें हैं- आपके मूल्य स्पष्ट रूप से परिभाषित होने चाहिए, आवश्यकता की सटीक पहचान होनी चाहिए, उसके क्रियान्वयन और क्षमता में लचीलापन होना चाहिए, विकेन्द्रीकरण के प्रति सचेतना होनी चाहिए, मानवाधिकारों की एक स्पष्ट समझ होनी चाहिए, और स्वतंत्रता पर जोर होना चाहिए। ये सब अगर ठीक हो तो तुलनात्मक अनुभव यह दिखाता है कि समानता का कार्यक्रम किसी एकीकृत आयोग द्वारा ही सशक्त रूप से क्रियांवित हो सकता है''[80]।

हालांकि हमें लगता है कि जो आयोग मौजूद है जैसे अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग, महिला आयोग आदि को कार्यशील रहना चाहिए। क्योंकि समाज के इतने बड़े वर्ग के प्रति मानवाधिकार हनन को जो अनेकानेक घटनाएं होती हैं उनके समाधान के लिए स्वतंत्र आयोगों की आवश्यकता है। भारत जैसे जनबहुल देश में एकीकृत आयोग काम के बोझ तले दब जायेगा। यह अपने लक्ष्य से भटक सकता है और इसकी प्रभावशीलता कम हो सकती है[81]।

परन्तु अल्पसंख्यक आयोग और प्रस्तावित समान अवसर आयोग का कोई औचित्य नहीं क्योंकि इसके लाभार्थियों की संख्या साधारण है, जो राष्ट्रीय औसत दर के समान हैं और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा ही संभाला जा सकता है।

अंत में, चूंकि प्रस्तावित समान अवसर आयोग केवल शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में ही अपने आप को सीमित रखना चाहता है इसलिए यह काम राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के जिम्मे भी छोड़ जा सकता है। क्योंकि महिला अनुसूचित जाति/जनजाति आदि आयोगों अन्य दूसरे काम बाधित होने के चलते इस क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहना चाहेंगे। प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में समाविष्ट करने के पक्ष में खासे कारण हैं।

अगर राष्ट्रीय मानव अधिकार के अंतर्गत प्रस्तावित समान अवसर आयोग का गठन हो तो यह 'अल्पसंख्यक आयोग की संकीर्णता' के आरोप से बच सकता है और मुस्लिमपरस्ती से उबर कर तर्कसंगत रूप से काम कर सकता है। 'राष्ट्रीय मानव अधिकार' के अंतर्गत 'समान अवसर आयोग' का गठन होने से धर्म से अधिक महत्व वंचित व्यक्ति को दिया जा सकेगा। 'समान अवसर आयोग' वंचित व्यक्ति के धर्म को वंचित व्यक्ति से अधिक महत्व दे रहा है।

विशेषज्ञ समिति की पूर्वग्रह युक्त दृष्टि की समीक्षा

देश का नाम	विशेषज्ञ समिति पर प्रभाव	भारतीय परिदृश्य से उनका अंतर
ब्रिटेन	नस्ल समानता आयोग	भारत में अलग-अलग नस्लों की बात एक मिथक है। भारत में बहुसंख्यक अर्थात् हिन्दुओं का कभी भी वेत जातियों की तरह रंगभेदी वर्चस्ववाद और प्रभुत्व का इतिहास नहीं रहा है। भारत में मुस्लिम कभी भी संस्थागत भेदभाव का शिकार नहीं हुए हैं। हालांकि विभाजन से पहले मुस्लिम शासकों के राज्यों में, जैसे हैदराबाद में हिन्दू भेदभाव के शिकार हुए थे। जाति प्रथा को भी नस्लभेद से समझा नहीं जा सकता।
फ्रांस	एक सार्वभौम राज्य में अलग-अलग सामाजिक परिचयों को मान्यता।	फ्रांस में सामाजिक पहचानों का अर्थ उनके भूतपूर्व अफ्रीकी उपनिवेशों के लोगों से है। वे अपने को फ्रांस में रहने वाले अरबी और मुसलमान ही समझते हैं। भारत में न एसा है और न ऐसा होना चाहिए।
दक्षिण अफ्रीका	अत्यंत शिक्षाप्रद नमूना। समाज में अतीत के भेदभाव को दूर करने के लिए विशेष उपायों की आवश्यकता। नियोक्ता और शिक्षा संस्थानों के कार्य को बगैर किसी द्वेष के समान अवसरों के लिए बहुआयामी सूचकांक पर तौलना और विविध क्षेत्रों में आदर्श आचार संहिता जारी करना।	दक्षिण अफ्रीका में श्वेत अल्पसंख्यकों का वहां के मूल अश्वेतों पर बर्बर रंगभेदी शासन था। अगर इससे भारत में किसी की तुलना हो सकती है तो वह अंग्रेजी शासन की भी नहीं बल्कि तुर्की पठान और मुगल शासनों की जहां इस देश के मूल निवासी हिन्दुओं पर धार्मिक और नस्लेभदी दोनों प्रकार के भेदभाव मौजूद थे। संविधान से परिचालित भारत में दक्षिण अफ्रीकी मॉडल की दूर-दूर तक

		कोई उपयोगिता नहीं है।

विशेषज्ञ समिति की राय है कि ब्रिटेन में भेदभाव से संबंधी सभी घटनाओं पर नजर रखने के लिए एकीकृत संस्थान का गठन हुआ। उसका कहना है- ''इस निर्णय पक्ष में जो विलक्षण तर्क है, वह यह कि अलग-अलग प्रकार के भेदभावों के दोहरावत या अतिच्छापन और अंतर्विभाजन के बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए और एक समेकीकृत संस्थान का निर्माण होना चाहिए जो भेदभाव के सभी मुद्दों पर ध्यान दे सके- ब्रिटिश उदाहरण कार्यक्षेत्रों में दृष्टि को परिसीमित करने और भेदभाव को सैद्धांतिक रूप से समझने की तरफ का रूझान है''[182]।

यह ब्रिटिश सरकार द्वारा एकीकृत संस्थान के गठन के पक्ष में दिये गये तर्कों का पूरा मिथ्याकरण था। ब्रिटिश सरकार की दलील कुछ इस प्रकार थी- ''एक नया समानता संस्थान (समान अवसर आयोग)- अगर मानवाधिकारों की रक्षा और प्रसारण के लिए और सक्षम उपाय न हो तो- वह समानता के लिए अपर्याप्त होगा, चाहे उसे जिस तरह से भी बनाया जाए। समानता और मानव अधिकारों के लिए संस्थागत संरचना के और भी कई विकल्प हैं। अगर उसे अपना काम प्रभावशाली ढंग से करना है तो नए समानता संस्थान को एक मानव अधिकार इकाई की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु यह उन सब आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगी जो हमने मानवाधिकारों के संरक्षण और प्रसारण की व्यवस्था के लिए किए हैं।

''एक स्वतंत्र समानता संस्थान और एक स्वतंत्र मानवाधिकार आयोग के सह-अस्तित्व के पक्ष में और विरोध में कई तर्क हैं। एक समेकीकृत मानवाधिकार और समानता आयोग तथा स्वतंत्र समानता आयोग और स्वतंत्र मानव अधिकार संस्था के विकल्पों में व्यवहारिक लाभ और हानि के प्रश्न पर गहराई से विचार करना चाहिए। परन्तु समय के साथ एक समानता संस्थान की ओर से एक समेकीकृत मानवाधिकार और समानता आयोग की तरफ बढ़ने के पक्ष में पुरजोर तर्क हैं। यही हमारा पसंदीदा विकल्प है''[183]।

परन्तु भारत की विशेषज्ञ समिति ने इन तर्कों की अनदेखी कर एक स्वतंत्र 'समान अवसर आयोग' की वकालत की-

''ब्रिटेन का नमूना शिक्षाप्रद है कि भारत में 'समान अवसर आयोग' का मार्ग स्थिर और तय नहीं है। प्रस्तावित 'समान अवसर आयोग' तथा दूसरे आयोगों के बीच में क्रियाशीलता और उससे उभरे अनुभव भविष्य में, संस्था के स्तर पर एकीकरण न भी हो,

तो भी कार्यों के समेकीकरण और सहक्रियता में परिणत हो सकता है। इसीलिए आयोगों की बहुलता अपने आप में कोई मुद्दा नहीं है''[84]।

इस तरह विशेषज्ञ समिति ने अपने तर्क में एकीकृत संस्थानों के ब्रिटिश नमूने को नकार दिया। उसने दुनियाभर के सभी संस्थानों को भी ठुकरा दिया जहां एकीकृत व्यवस्था है। अगर हम विशेषज्ञ समिति के इस तर्क को मान लेते हैं कि मानव अधिकार और समान अवसर के लिए एक समेकीकृत संस्थान संभव नहीं है तो क्या ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड गलत रास्ते पर जा रहे हैं। उल्लेखनीय है कि इन देशों के संस्थान ही 'समान अवसर आयोग' के गठन के प्रेरणास्रोत थे।

समान अवसर और मानव अधिकार के लिए एक एकीकृत संस्थान के पक्ष में एक और भी कारण है। यह न्याय की प्रक्रिया को सरल बनाता है। संस्थानों की विविधता कई बार कार्यों का दोहरीकरण और अतिच्छादन करती है। यह न केवल संस्थान के कार्य के लिए नुकसानदेह है बल्कि पीड़ित व्यक्ति के लिए भी अहितकर लेता है। यह सही है कि ऑस्ट्रेलिया और ब्रिटेन में मानव अधिकार के लिए कोई विशेष संस्थान नहीं है। ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, आयरलैंड और ब्रिटेन के एकीकृत आयोगों के निर्बाध तथा सफल कार्यक्रम से ये पता लगता है कि एक ही संस्थान मानव अधिकार और समानता के प्रश्न को सम्बोधित कर सकता है। एकीकृत संस्थान के फायदे कुछ इस प्रकार हं।

भारत की जनसंख्या का एक चौथाई भाग अशिक्षित है। उनके लिए इस बात में फर्क कर पाना मुश्किल है कि उनके साथ हुआ अन्याय मानव अधिकार उल्लंघन का मामला है या भेदभाव है। मानव अधिकार और समानता के मुद्दे कुछ इस प्रकार एक दूसरे में उलझे हुए हैं कि शिक्षित वर्ग के लिए भी इनमें फर्क करना मुश्किल हो जाता है। किसी पीड़ित व्यक्ति को एक आयोग से दूसरे तक भागने के कष्ट से बचाने के लिए यह अधिक व्यावहारिक होगा कि एक ही आयोग हो जिससे तुरन्त संपर्क किया जा सके। यह केन्द्रीकृत व्यवस्था(सिंगल विंडो) की तरह काम करेगा।

एक एकीकृत संस्थान में संसाधनों का बेहतर और प्रभावशाली प्रबंधन हो सकेगा। यह कार्य के दोहराव या हावी होने की कोशिश को रोकेगा और मानव अधिकार के सभी लक्षित क्षेत्रों तक श्रेष्ठ व्यवहारों को प्रोत्साहित करेगा[85]।

विशेषज्ञ समिति ने इन कारकों पर विचार नहीं किया। ऐसा नहीं है कि यह समिति इस बात से अज्ञात थी कि कार्य क्षेत्रों का दुहराव या हावी होने की कोशिश हो सकता है जिससे अकुशलता तथा भ्रम की स्थिति पैदा होगी। परन्तु उनकी दृष्टि में प्रश्न इस चिंता का नहीं बल्कि उनके अपने आवश्यकता की थी- ''यह अनिवार्य है कि एक विषय के

अधिकार क्षेत्र पर एक से ज्यादा प्रतिष्ठान काम कर रहे होंगे, जिससे शिकायत करने वालों को एक से अधिक विकल्प प्राप्त होंगे'[86]।

अगर इस तर्क को अपना लिया जाए तो सरकार अलग-अलग गरीबी उन्मूलन तथा रोजगार योजना या स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में शामिल क्यों नहीं करती! इससे भी तो गरीबों का विकल्प सीमित हो जाता है! एकीकृत ग्रामीण विकास योजना का विचार विविध ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में फंस कर ग्रामीण उन्नति के मंद पड़ जाने के तीखे अनुभवों से उभरा। परन्तु विशेषज्ञ समिति के ऐसे अनुभवों के प्रति विकर्षण दुराग्रह तथा राजनीति से प्रेरित हैं।

इसी परिप्रेक्ष्य में जिस देश की कुछ तुलना भारत से हो सकती है वह है दक्षिण अफ्रीका। उस देश में एक 'दक्षिण अफ्रीकी मानव आयोग' (साउथ अफ्रीका ह्यूमन कमीशन) और 'रोजगार समानता आयोग' (कमीशन फॉर एमप्लाइमेंट इक्वलिटी) है। रोचक बात यह है कि दक्षिण अफ्रीका मानव आयोग के पास एक समानता इकाई है। इसका काम 'प्रमोशन ऑफ इक्वलिटी' एंड प्रिवेन्शन ऑफ अनफेयर डिसक्रिमिनेशन एक्ट नं. 2, सन् 2000' के तहत यह सुनिश्चित करना है कि अतीत से चली आ रही लिंग, अक्षमता और नस्लभेद समाज से समाप्त किये जाएं[87]। दक्षिण अफ्रीका का उदाहरण गौरतलब है क्योंकि वहां रंगभेदी शासन के दौरान हुए अन्यायों की बात बार-बार भुनाई नहीं जाती है और उस अतीत को पीछे छोड़कर एक गणतांत्रिक राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ जाना चाहते हैं। उन्होंने एक 'सत्य आर सलह' आयोग (ट्रूथ एण्ड रिकनसिलिएशन कमीशन) का गठन किया है, जिसका उद्देश्य अतीत से चले आ रहे अन्यायों को जड़ से समाप्त करना और एक संगठित राष्ट्र की भावना जागृत करना है। परन्तु इसके विपरीत हम अपनी विभाजन रेखाओं को कायम रखना चाहते हैं। यहां तक कि अंतर-सामुदायिक सम्पर्कों में भेदभाव का हौवा खड़ाकर संस्थागत हस्तक्षेप आमंत्रित करते हैं। दूसरी तरफ दक्षिण अफ्रीका में 'रोजगार समानता आयोग' का गठन रोजगार समानता अधिनियम 55, सन् 1998 के तहत हुआ। इसकी भूमिका केवल रोजगार के क्षेत्र तक ही सीमित है। दोनों पतिष्ठानों के कार्यक्षेत्र के दोहराव या अतिच्छादन को रोकने के लिए ऐसा किया गया।

यह स्पष्ट है कि विशेषज्ञ समिति ने दुनियाभर के श्रेष्ठ संस्थागत व्यवहारों से विशेषकर ब्रिटेन और दक्षिण अफ्रीका के उदाहरणों से अपना मुंह मोड़ लिया और एक स्वतंत्र 'समान अवसर आयोग' की वकालत की। हमने पहले ही देखा कि समिति कैसे 'समान अवसर आयोग' को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अंतर्गत बनाने की मांग तो दूर, उसके तर्ज पर भी बनाने का सुझाव नहीं दे सकती थी। जिस बेताबी से अल्पसंख्यकों मामलों का मंत्रालय काम कर रहा है उससे अल्पसंख्यकों का सचमुच कुछ भला नहीं होगा।

अद्‌भुत मानदंड

अगर ऑस्ट्रेलिया का उदाहरण लिया जाए तो (केन्द्रीय) मानव अधिकार तथा समान अवसर आयोग के अलावा वहां प्रत्येक राज्य का अपना समान अवसर आयोग है। यह ऑस्ट्रेलिया की संघीय गणतांत्रिक प्रणाली है की वजह से है। उसी प्रकार ब्रिटेन में, जो ऐकिक शासन है वहां स्कॉटलैंड तथा वैल्स के लोगों के लिए विशेष कोष हैं। इसके अलावा स्कॉटलैंड और वैल्स से एक-एक सदस्य समनता और मानव अधिकार के आयोग के सदस्य चुने जाते हैं[88]। दक्षिण अफ्रीका में दक्षिण अफ्रीकी मानव अधिकार आयोग (एस.एच.आर.सी.) के पांच राज्यों में अलग-अलग कार्यालय हैं ताकि वह स्थानीय शिकायतों पर ध्यान दे सकें। भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो दूसरे देशों के श्रेष्ठ संस्थागत व्यवहारों की पूरी तरह से अनदेखी कर दी गयी है। विशेषज्ञ समिति ने भारत में पांच क्षेत्रीय समान अवसर आयोग की स्थापना की बात की है 'जिससे कि आयोग ज्यादा लोगों की पहुंच के अंदर हो, क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग हो सके और हर क्षेत्र की प्रासंगिक समस्याओं की विशेषज्ञता हो सके। परन्तु हर राज्य में समान अवसर आयोग बनाने का सुझाव नहीं है। इसकी चर्चा पहले हो चुकी है। राज्य मानव अधिकार आयोगों और राज्य अल्पसंख्यक आयोगों का कोई संज्ञान विशेषज्ञ समिति ने नहीं लिया।

विशेषज्ञ समिति का एक और असंगत सुझाव 'समान अवसर आयोग' के सदस्यों की नियुक्ति से जुड़ा हुआ है। हमने पहले ही देखा कि कैसे अल्पसंख्यक मामलों का मंत्रालय केन्द्रीय 'समान अवसर आयोग' तथा उसकी क्षेत्रीय शाखाओं में सदस्य नियुक्त करने का अधिकार अपने पास रखकर इसका साम्प्रदायिकरण कर रहा है। लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। विशेषज्ञ समिति ने 'समान अवसर आयोग' अध्यक्ष पद के लिए एक बड़ी विचित्र योग्यता का मानदंड रखा है। बिल कहता है कि अध्यक्ष को लोक सेवा के क्षेत्र में कोई विशिष्ट व्यक्ति होना चाहिए जिसे संविधान के धर्म निरपेक्षता तथा समतावादी मूल्यों की अच्छी समझ होनी चाहिए[89]। अब प्रश्न खड़ा होता है कि इसका निर्धारण कौन करेगा कि कोई व्यक्ति 'धर्मनिरपेक्ष तथा समतावादी मूल्यों' की सही जानकारी रखता है कि नहीं। हमारा संविधान कहीं सेकुलर या धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या नहीं करता (संविधान के हिन्दी संस्करणों में पंथ-निरपेक्ष शब्द का प्रयोग किया गया है)। तो क्या न्यायालय उस व्यक्ति के धर्मनिरपेक्ष होने का आंकलन करेगा? किसी राष्ट्रीय संस्थान में सदस्यों/अध्यक्ष की नियुक्ति के लिए इस प्रकार के अतार्किक मानदंड शायद ही दुनिया में और कहीं बने हों। यहां तक कि राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग में भी इस प्रकार के मानदंड नहीं हैं।

अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय का इस मुद्दे से जरूरत से ज्यादा जुड़ाव ही योग्यता के मानदंड से संबंधित है। क्या ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय ने 'समान अवसर आयोग' को 'धर्मनिरपेक्ष' संस्थान बनाने में अपना पूरा दमखम लगा दिया है? संक्षेप में 'समान अवसर आयोग' यह संदेश देता है कि वह देश के वंचित नागरिकों का नहीं बल्कि केवल अल्पसंख्यक (मुसलमानों) का रहनुमां है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त बहस से यह स्पष्ट है कि विशेषज्ञ समिति के पास केवल 'समान अवसर आयोग' क गठन का तौर-तरीका सुझाने का अधिकार था। चूंकि 'समान अवसर आयोग' का एक स्वतंत्र संस्थान के रूप में गठन पहले से ही तय था तो विशेषज्ञ समिति ने दुनियाभर में हो रहे मानव अधिकार और समानता के क्षेत्र में आ रहे परिवर्तनों को नजरअंदाज कर दिया। इस प्रक्रिया में उन्होंने कूछ ऐसा सुझाया जो उनके कथित रूप से प्रेरणाश्रोत देशों में भी नकारा जा चुका है।

एक पंथ निरपेक्ष गणतांत्रिक समाज में मानव अधिकार के आदर्श से ही भेदभाव के जटिल मुद्दे सुलझाये जा सकते हैं। समान अवसर तो गणतंत्र का केन्द्र बिन्दु है क्योंकि गणतंत्र तो सभी के लिए है। भारतीय राज्य के सामने प्राथमिक कर्तव्य समानता को समुदाय-निष्पक्ष रूप से क्रियान्वयन करना है ताकि समुदायों के बीच में प्रतिस्पर्धा न बढ़े और संदेह उत्पन्न न हो। बिल्कुल यही पहलू राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने अपनी चौथी वार्षिक रिपोर्ट में रेखांकित किया था। इस रिपोर्ट का अल्पसंख्यक आयोग के परंपरागत दृष्टिकोण से एक मौलिक अंतर था। यह लौकिक मुद्दों और विषयों का धर्म के आधार पर बहुसंख्यकता और अल्पसंख्यकता में विभाजन का विरोधी था। आयोग ने बहुत सोच विचार करके पूरी व्यवस्था को युक्तिसंगत बनाने के लिए एक 'राष्ट्रीय एकता तथा मानव अधिकार आयेाग' का सुझाव दिया था जिसमें कई अल्पसंख्यक मामलों के विभाग के साथ और भी विभाग होते[90]। भारत के जनमानस को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक में विखंडन से बचाने के लिए एक एकीकृत संस्थान बनाने की अनुशंसा अल्पसंख्यक आयोग 1985 तक करता रहा, जिसे हम भारतीय धर्मनिरपेक्षता का शाहबानों पूर्व दौर भी कह सकते हैं। शाहबानो की घटना ने भारतीय राज्य की स्थिति को गहराई से प्रभावित किया और विभाजन को बढ़ावा दिया। अल्पसंख्यक आयोग भी कोई अपवाद नहीं था। अपनी 12वीं रिपोर्ट, 1989-1990, में आयोग ने कहा- ''हमें ज्ञात होगा कि चौथी वार्षिक रिपोर्ट (1981-1982) ने कौमी एकता और धर्मनिरपेक्ष परम्परा के प्रसार के लिए और अल्पसंख्यक सहित सभी वर्गों के नागरिकों की रक्षा के लिए एक व्यापक व्यवस्था की अनुशंसा कर एक राष्ट्रीय एकता तथा मानव अधिकार आयोग बनाने का सुझाव दिया

था''। इसने आगे भी चौथी रिपोर्ट के मानव अधिकार आयोग पर अंश विशेष का उल्लेख करते हुए कहा- ''इससे राजनैतिक दलों के बीच में सही या गलत रूप से अल्पसंख्यकों का मसीहा बनकर उनका वोट बटोरने या ऐसे लोगां को बेनकाब करने की होड़ से बचा जा सकता है। ऐसी होड़ समाज को और बांटती है न कि जोड़ती है''।

परन्तु अंत में आयोग ने अपनी धर्मनिरपेक्ष धारणा को छोड़ दिया और चौथी तथा पांचवीं वार्षिक रिपोर्ट में दिये गये राष्ट्रीय एकता तथा मानव अधिकार की अनुशंसा को वापस ले लिया[91]। अल्पसंख्यक मामलां के मंत्रालय को नेहरू और मुस्लिम लीग के बीच की बहस को पढ़ना चाहिए जहां मुस्लिम लीग ने नेहरू द्वारा 1937 में उठाये गए लौकिक मुद्दों जैसे- गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा का भी धर्म आधारित विभाजन करना चाहा। नेहरू ने 10 जनवरी, 1937 को एक बयान में कहा था- 'किस प्रकार से मुसलमान खेत मजदूरों का स्वार्थ् हिन्दू खेत मजदूरों से भिन्न है या किस प्रकार से मुसलमान कामगार, कारीगर, व्यापारी व जमींदार और निर्माताओं के हित हिन्दू कामगार, कारीगर, व्यापारी तथा जमींदर और निर्माताओं से अलग हैं'। न्यायमूर्ति टी.एस. ठाकुर और सिद्धार्थ मृदुल ने भी सच्चर कमेटो के औचित्य पर यही प्रश्न पूछा था- ''गरीबी सभी का शत्रु है। यह किसी विशेष समुदाय को देखकर नहीं आती हैं आपको गरीबी के विरूद्ध लड़ना चाहिए न किसी विशेष समुदाय के गरीबी के विरूद्ध। समस्या तो यही है जो आप कह रहे हैं कि अल्पसंख्यक समुदाय के लिए और धन की आवश्यकता है। क्या इस धन का आवंटन अलग-अलग जाति और धर्म के लिए नहीं होना चाहिए? क्या सच्चर कमेटी ने कहा कि सुविधायें दूसरे समुदायों के लिए मौजूद हैं? क्या पीने के पानी की सुविधा बहुसंख्यक समुदाय के लिए मौजूद हैं? क्या उनमें से कोई झुग्गियों में नहीं रहता? संविधान के अनुसार क्या एक कल्याणकारी राज्य यह कह सकता है कि वह केवल एक विशेष इलाके का विकास करेगा? क्योंकि वहां अल्पसंख्यक लोग बसते हैं। क्या वह दावा कर सकता है कि वह केवल उसी इलाके पर धन खर्च करेगा?''[92]।

मुख्य मुद्दा सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में जाति एवं समुदाय विशेष के प्रति निष्पक्ष होकर समानता के सिद्धांत का प्रयोग करना है। मूलभूत मानवीय आवश्यकतायें जैसे- रोजगार और शिक्षा अगर साम्प्रदायिक खाई में फंस जाएं तो देश की पंथ निरपेक्ष गणतांत्रिक परंपरा को अपूर्णिय क्षति होगी। हमें सच्चर कमेटी रिपोर्ट और उसकी संतान 'समान अवसर आयोग' को इस परिप्रेक्ष्य में देखना होगा ताकि भारत के गणतांत्रिक ढांचे की ताकत और कमजोरी दोनों समझी जा सके। इस विवेचन के बाद हमारा मानना है कि सच्चर कमेटी रिपोट और 'समान अवसर आयोग' पर निष्पक्ष विमर्श के लिए इसे देश में अलग-अलग मंचों पर रखना पड़ेगा। जल्दबाजी और जनता की दृष्टि से बच निकल जाना इनके साम्प्रदायिक चरित्र को बलवान करेगा।

परिशिष्ट 'क'

	हिन्दू महिला (कुल)	हिन्दू महिला (साधारण)	अनुसूचित जाति महिला	मुस्लिम महिला
महिला साक्षरता दर*	54.1%	70%	43.8%	49.8%

*भारत की जनगणना 2001

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 का कहना है कि कभी स्कूल नहीं गई ऐसी महिलाओं का अनुपात मुसलमानों में ज्यादा है। मुस्लिमों में 48 प्रतिशत महिलायें कभी स्कूल नहीं गई और हिन्दुओं में 41 प्रतिशत। हिन्दू महिलाओं की अपेक्षा मुस्लिम महिलाएं माध्यमिक शिक्षा भी ग्रहण नहीं करती है।

*	कुल प्रजनन दर	अभी गर्भवती (प्रतिशत)	40-49 वर्ष की महिलाओं की औसतन संतानों की संख्या
हिन्दू	2.65	5	3.97
मुस्लिम	3.09	6.7	4.60

*राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3

प्रति मुस्लिम महिला प्रति हिन्दू महिला से औसतन 0.63 ज्यादा संतानों को जन्म दे रही हैं।

विवाहित महिलाओं का प्रतिशत जो गर्भनिरोध के उपायों का प्रयोग कर रही हैं (1998-1999)

*	कोई भी उपाय	कोई भी आधुनिक उपाय	गर्भ निरोधक गोली	गर्भ निरोधक का उपकरण	कंडोम

हिन्दू	69.8	50.2	8.2	1.4	2.8
मुस्लिम	56.3	37.6	12.6	0.8	3.5

*राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2

नवजात मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर

	नवजात मृत्यु दर (0–1 वर्ष) (प्रति हजार)		**शिशु मृत्यु दर (1–5 वर्ष) (प्रति हजार)**	
	हिन्दू	**मुस्लिम**	**हिन्दू**	**मुस्लिम**
जनगणना–1991	74	68	97	91
राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–1	90	77	124	106
राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2	77	59	107	83

मुस्लिम महिलायें और अनुसूचित जाति/जनजाति दोनों वर्ग में ही अधिक प्रजनन दर पायी जाती है। परन्तु मुस्लिम समुदाय में नवजात और शिशु मृत्यु दर बहुत कम है, जबकि अनुसूचित जाति और जनजाति में यह अधिक है।

समुदाय	**प्रतिशत शहरी आबादी**
हिन्दू	26%
मुस्लिम	36%

राज्य/समुदायवार गरीबी की स्थिति

गरीबी का भार/राज्य'	हिन्दू अनुसूचित जाति/जनजाति	हिन्दू अन्य पिछड़े वर्ग	मुस्लिम
कुल	34.8	19.5	26.9
गुजरात	24	14	7
कर्नाटक	21	14	18
बिहार	56	29	38
उड़ीसा	60	30	22
छत्तीसगढ़	40	27	40

*जनगणना 2001: सच्चर कमेटी द्वारा सर्वेक्षित 21 में से 10 राज्यों में मुस्लिमों की समग्र स्थिति हिन्दुओं से बेहतर है।

□

संदर्भ सूची-1

(प्रस्तावना)

1. विल्सन हंटर, द इंडियन मुसलमान, लंदन 1871, पृ. 168-69
2. पीरपुर रिपोर्ट, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग, 1939, पृ. 92-93
3. अभय कुमार दूबे, ''समान अवसर सिद्धांत और अल्पसंख्यक'' दैनिक भास्कर, दिल्ली संस्करण, 16 जुलाई, 2009। श्री दुबे सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज, दिल्ली से जुड़े हुए हैं।
4. द राइट टू इक्वलिटी, सम्पादकीय, कम्यूनलिज्म कम्बैट, मार्च 2008, पृ. 5
5. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, नवम्बर, 2006 पृ. 9
6. यकशां मौका कमीशन, अख्तियारा पर सलमान खुर्शीद खामोश, हमारा समाज, 18 जुलाई, 2009 पृ. 1
7. हिन्दुस्तान एक्सप्रेस (उर्दू दैनिक), 2 जुलाई, 2009
8. कमीन बराए यकशां मौका, लोगों का बख्तियार करने का जरिया- (सलमान खुर्शीद), रोजनामा राष्ट्रीय सहारा, 11 जुलाई, 2009
9. न्यू लॉ फॉर इक्वलिटी ऑन कार्डस, जिया हक, हिन्दुस्तान टाइम्स, 16 जून, 2009, देखें ए.एम. जिगेश की रिपोर्ट ''खुर्शीद्स प्लेट फुल विथ सच्चर पैनल रिपोर्ट, मेल टुडे, 17 जून, 2009, सलमान खुर्शीद के साथ प्रतिभाज्योति की बातचीत, नई दुनिया, 14 जनवरी, 2009
10. खुर्शीद होपफुल ऑन ई.ओ.सी. इनस्पाइट ऑफ रोड ब्लॉकस्, इकोनॉमिक टाइम्स, 11 जुलाई, 2009
11. एंड इक्वलिटी फॉर ऑल सबिना अख्तर की रिपोर्ट, द टेलीग्राफ, कलकत्ता, 29 जुलाई, 2009
12. इक्वल अर्पोचुर्निटि, जावेद आनन्द कम्युनलिज्म कम्बैट, मार्च 2008
13. वही
14. माइनोरोटीज डेमोक्रेसी, कलकत्ता 1968, पृ. 32
15. समान अवसर आयोग का सिद्धांत और अल्पसंख्यक, दैनिक भास्कर, 16 जुलाई, 2009
16. इंडियाज माइनोरीटीज, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1948 पृ. 30

संदर्भ सूची-2

(समान अवसर आयोगः सिद्धांत और व्यवहार)

1. एलीमेंटस ऑफ सोशल जस्टिस, एल.टी. हौव हाउस, जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन, लंदन 1922 पृ. 94
2. एफरमेटिव एक्शन एण्ड जस्टिस, जोहान राबे, बुक्स ऑन डिमांड, पृ. 83
3. कांस्टीट्यूटेंट एसेंबली डिबेट्स, भाग-8, पृ. 432-439
4. वहीं पृ. 433
5. कांस्टीट्यूटेंट एसेंबली डिबेट्स, भाग-8, पृ. 298-299
6. यह जांच समिति मुस्लिम लीग द्वारा 1937 के प्रादेशिक चुनावों के उपरांत कांग्रेस शासित राज्यों में मुस्लिमों की स्थिति की समीक्षा के लिए बनायी गई थी।
7. इंडिया आफ्टर गांधी, रामचन्द्र गुहा, पिकाडोर इंडिया
8. सच्चर कमेटी ने भारतीय नागरिकों को उनके सामाजिक-धार्मिक वर्गों के अनुसार बांटा है।
9. मार्च, 2005 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति राजिन्द्र सच्चर के नेतृत्व में सात सदस्यीय उच्चस्तरीय समिति का गठन किया जिसने नवम्बर, 2007 में प्रधानमंत्री के सामने 400 पन्नों की विस्तृत रिपोर्ट पेश की।
10. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 240
11. वही
12. वही
13. इसका विस्तृत विवरण अंतिम अध्याय में दिया गया है।
14. समान अवसर आयोगः क्या क्यों कैसे? 4.5
15. इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन इज इट डिजाइरेवल? असगर अली इंजीनियर http://indianmuslims.ineequal-opportunity-commission-is-it-desirable/
16. फ्रोम विलियम हंटर टु राजिन्द्र सच्चर, ताहिर महमूद, मिलि गजट, 19 नवम्बर, 2006 http://www.milligazette.com/dailyupdate/2006/200611195_condition_muslims_india.htm
17. तारा चंद, हिस्ट्री ऑफ फ्रिडम मूवमेंट इन इंडिया भाग-4, पृ. 246-47, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार 1972

18. राकेश सिन्हा सच्चर रिपोर्ट: कॉन्सपिरेसी टु डिवाइड द नेशन, फाइल सं. 50, प्रधानमंत्री की उच्चस्तरीय कमेटी दस्तावेज (सच्चर कमेटी), अभिलेख विभाग, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी, नई दिल्ली पृ. 3
19. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 239
20. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 11
21. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 9
22. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 250
23. कांस्टीट्यूट एसेंम्बली डिबेट, अधिकृत रिपोर्ट भाग-8, पृ. 287
24. इंडियन मुस्लिम: नीड फॉर ए पॉजेटिव आउटलुक, मौलाना वहीउद्दीन, 1995
25. द ग्रैंड मदर, एलफ्रेड टेनिसन (1864)
26. राजकुमार ओहरी, कॉनवल्युटेड फाइनडिंग ऑफ सच्चर कमेटी, भारतीय विचार मंच, 2008
27. सच्चर रिपोर्ट: कॉन्सप्रेसी टू डिवाइड द नेशन, फाइल सं. 50, प्रधानमंत्री की उच्चस्तरीय कमेटी दस्तावेज (सच्चर कमेटी), अभिलेख विभाग, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी, नई दिल्ली पृ. 3
28. प्रासंगिक आंकड़ों के लिए परिशिष्ट 1 देखिये।
29. सेंसस: फिगरिंग आउट द ट्रुथ, अंबरिश दीवानजी, रिडिफ.कॉम, सितम्बर 17, 2004
    http://in.rediff.com/news/2004/sep/17spec.htm
30. परिशिष्ट 1 देखें
31. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 62
32. नेशन सैम्पल सर्वे रिपोर्ट नं. 473- लिटरेसी एण्ड लेवल ऑफ एजुकेशन ऑफ इंडिया, 1999-2000
33. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 84
34. एक्सकुलुशन, आइडेंटीटी एण्ड मुस्लिम वुमैन एण्ड मुंबई-2 न्यू एज वकीली, जनवरी 20-26, 2008
35. मौलाना थनवी, अरूण शौरी की पुस्तक वर्ल्ड ऑफ फतवाज (1994 में उद्धृत) इसी प्रकार फतवा ए रहीमीयां कहता है 'लड़कियों को स्कूल और कॉलेज में भेजना जायज नहीं क्योंकि ऊंची तालिम और डिग्रियों से फायदा कम नुकसान ज्यादा होता है। स्कूल का माहौल ही उसको बिगाड़ने के लिए काफी होता है।'
36. वही
37. महिलाओं के लिए अच्छे होस्टल जहां गोपनीयता और सुरक्षित समुदाय की भावना है ज्यादा तरह महंगे ही होते हैं।

http://www.streetdirectory.com/travel_guide/65723/real_estate/women_hostel.html
38. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 144
39. वही पृ. 96
40. वही पृ. 158
41. वही पृ. 83
42. वही पृ. 89
43. वही पृ. 245
44. समान अवसर आयोग का उद्देश्य मुस्लिमों के लिए शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में समानता लाना है।
45. सच्चर दस्तावेज फाइल नं. 85 पृ. 11
46. कांस्टीट्यूटेंट एसेंबली डिबेट, अधिकृत रिपोर्ट भाग-8, (16.5.1949-16.6.1949) पृ. 350
47. म्यूजिंग इन इंडियन इकोनोमी (तीन प्रबंधों का संकलन), 2006 पृ. 185
48. वही पृ. 49
49. वही पृ. 50
50. मजलिस 85 पृ. 500
51. सच्चर दस्तावेज भाग-1, संख्या 32, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम लाइब्रेरी पृ. 16
52. कर्नल अनिल अठाले 14.2.2006 मुस्लिमस् इन द आर्मी: ए डेंजरस संसेस http://www.rediff.com/news/2006/feb/14guest.htm
53. सच्चर कमेटी रिपोर्ट, बिल पृ. 10
54. नेशनल सैम्पल सर्वे ऑर्गेनाइजेशन के 61वें सर्वेक्षण के अनुसार देश में 19.59 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 8.63 प्रतिशत जनजाति और 40.94 अन्य पिछड़े वर्ग हैं जो कुल मिलाकर 69.1 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसके अलावा 2 प्रतिशत विकलांग व्यक्ति भी हैं।
55. विशेषज्ञ समिति बिल, अल्पसंख्यक मंत्रालय, पृ. 10-15
56. मानव अधिकार आयोग एक्ट पृ. 17-18
57. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? 1.5
58. वही
59. वही 1.9
60. सीनेडी कॉम, सिंगल इक्वलिटी बॉडी लेशन फ्रोम एर्वोड, इ.ओ.सी. यूके वर्किंग पेपर श्रृंखला 4, प. IX
61. अंतुले: इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन टु बी सेट अप, द हिन्दू, 1 सितम्बर, 2007 http://www.hindu.com/2007/09/01/stories/2007090161831700.htm

62. समान अवसर आयोग बिल पृ. 8
63. रिलिजियस कम्यूनिटी एण्ड डेवलपमेंट 26-27.03.2007 राष्ट्रीय कार्यशाला संक्षेपित रिपोर्ट जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
64. समान अवसर आयोग बिल पृ. 7
65. आर द ब्राह्मणस् द न्यू दलित्स् ऑफ टुडे? फ्रांस्वा गोतिए http://www.rediff.com/news/2006/may/23franc.htm
66. एफरमेटिव एक्शन इन इंडिया फ्लिपस कास्ट रोलस, ऐरिका ली नेलसन, वाशिंगटन टाइम्स, 02.09.2006 http://www.washingtontimes.com/world/20060925-123036-9100r.htm
67. सच्चर रिपोर्ट: ऑब्जेक्टिव एनालाइसेस, विवेक गुम्सते, http://viewfromafar.sulekha.com/blog/post/2006/12/the-sachar-report-an-objective-analysis-this-article.htm
68. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? पृ. 32
69. वही पृ. 417
70. इंट्रोडक्शन टू द कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया- दुर्गा दास बासु 19 ई पृ. 416
71. विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट पृ. 18
72. कांस्टीट्यूटेंट एसेंबली डिबेट, अधिकृत रिपोर्ट भाग-8, पृ. 339
73. वही पृ. 291-294
74. वही पृ. 335-337
75. ए हिस्ट्री ऑफ सूफीजम इन इंडिया- एस.ए.ए.ए. रिजवी 1978, पृ. 295-296; द दिल्ली सलतनत (द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपुल भाग-6) पृ. 622-623; मध्य भारत में मुस्लिम राज्यों का इतिहास ये दिखाता है कि हिन्दुओं के लिए प्रशासन और सेना में कोई सम्मानजनक पद नहीं था। ये सभी विदेशी या भारतीय मुस्लिमों के कब्जे में थे। ये ही व्यक्ति भारत की नीति निर्धारण किया करती थी।
76. इक्वल अपोर्चुनिटि कमीशन, वाई वाट एण्ड हाउ पृ. 16
77. सच्चर कमेटी रिपोर्ट पृ. 240
78. एवोलिसन ऑफ द कमीशन फॉर रेशियल इक्वलिटी, एच.सी.देव मई 5, 1982 भाग-23, पृ. 39-45
79. इक्वलिटी एण्ड ह्यूमन राइट्स कमीशन 1अक्टूबर, 2007 को बना लेकिन ब्रिटेन के सरकार ने एकीकृत प्रतिष्ठान के गठन का निश्चय अक्टूबर, 2005 में ही स्पष्ट कर दिया था।
80. ए सिंगल इक्वलिटी बॉडी: लेसन्स लर्नड फ्रॉर्म एब्रोड इ.ओ.सी. यूके, वर्किंग पेपरस् सीरिज 4, कांम सीनेडी, पृ. 55

81. वही
82. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? पृ. 30
83. द केस फॉर ए ह्यूमन राइटस कमीशन, ज्वांइट कमेटी ऑन ह्यूमन राइटस, छठा रिपोर्ट
    http://www.publications.parliament.uk/pa/jt200203/jtselect/jtrights67/6703.htm
84. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? पृ. 30
85. द कमीशन फॉर इक्वलिटी और ह्यूमन राइटस, ए न्यू एण्ड अनर्सट एण्ड टाइम, कॉम सीनेडी इंडस्ट्रीयल लॉ जनरल, जून 2007
86. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? पृ. 35
87. vide http://www.sahrc.org.za
88. द इक्वलिटी एक्ट, 2006, यूके, पृ. 60
89. समान अवसर आयोग: क्या क्यों कैसे? पृ. 12
90. देखिये अल्पसंख्यक आयोग की चौथी वार्षिक रिपोर्ट नई दिल्ली 1981। आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष थे भारत क भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति मिर्जा हामीद उल्ला बेग। दूसरे सदस्य थे कुशक बकुला, सुजन सिंह, के.टी. सतारावाला, एस.ए. दोराई सबासटीयन
91. अल्पसंख्यक आयोग 12वीं वार्षिक रिपोर्ट 1990
92. दिल्ली हाईकोर्ट स्नवस सेंटर ऑन सच्चर, द स्टेट्समैन, मई 13, 2008

□□□

राकेश सिन्हा

मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय
के राजनीति विज्ञान विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर तथा
भारत नीति प्रतिष्ठान के मानद निदेशक हैं।